Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन-शब्द-कोष

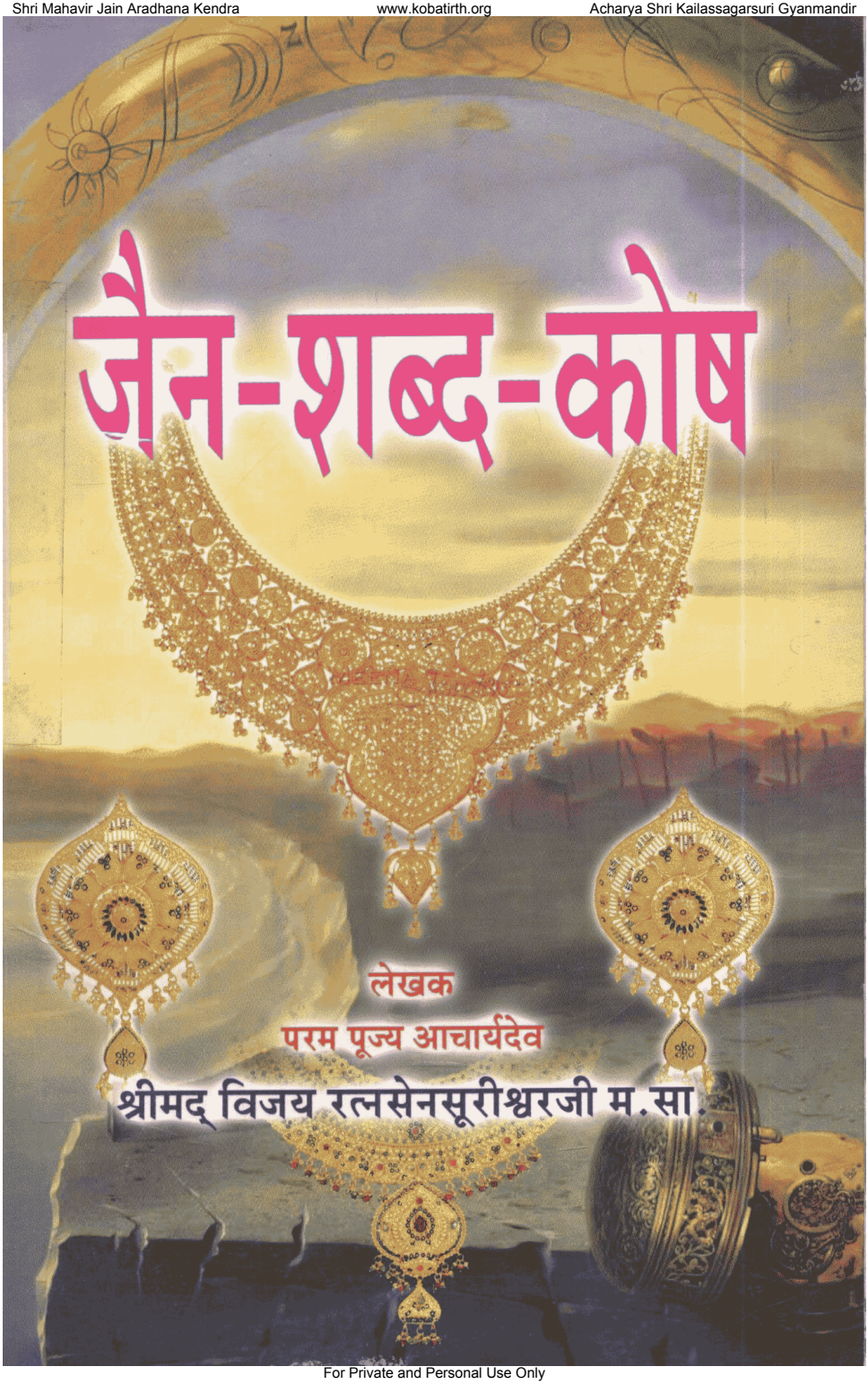

लेखक
परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन-शब्द-कोष

✵ लेखक ✵

जैन शासन के महान् ज्योतिर्धर,
परम शासन प्रभावक पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के
तेजस्वी शिष्यरत्न, अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि,
प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के
कृपापात्र चरम शिष्यरत्न प्रवचन-प्रभावक, मरुधररत्न,
गोडवाड के गौरव, हिन्दी साहित्यकार
परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

157

प्रकाशक

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन 47, कोलभाट लेन, ऑ. नं. 5,
डॉ. एम.बी. वेल्कर लेन, ग्राउंड फ्लोर,
मुंबई-400 002. Tel. 2203 45 29
Mobile : 98920 69330

ACHARYA ... GYANMANDIR
SHRI ... KENDRA
Koba, Gandhinagar ... 009
Phone : (079) 2327625..., 23270204-0

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आवृत्ति : प्रथम • मूल्य : 35/- रुपये • विमोचन : दि. 12-9-2012
स्थल : कस्तुरधाम-पालीताणा

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 2500/- रु.
आप जैन धर्म के रहस्य - जैन इतिहास - जैन तत्त्वज्ञान - जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। आजीवन सदस्यों को अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा.*** का उपलब्ध हिन्दी साहित्य, प्रतिमास प्रकाशित **अर्हद् दिव्य संदेश** एवं भविष्य में प्रकाशित हिन्दी साहित्य घर बैठे पहुँचाया जाएगा। आप मुंबई या बेंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चेक, ड्राफ्ट से रकम भर सकोगे।

प्राप्ति स्थान

1. चंदन एजेंसी M. 9820303451
607, चीरा बाजार, ग्राउंड फ्लोर, मुंबई-400 002.
✆ R.: 2206 0674 O. 2205 6821
2. चेतन हसमुखलालजी मेहता
पवनकुंज, 303, A Wing, नाकोड़ा हॉस्पिटल के पास, भायंदर-401 101. ✆ 2814 0706
M. 9867058940
3. सुरेन्द्र गुरुजी
C/o. गुरुगौतम एंटरप्राइज, 14, रुक्मिणी बिल्डींग, आदिनाथ जैन मंदिर, चिकपेट, बेंगलुर-560 053.
M.08050911399,धीरज 934122279
4. श्री आदिनाथ जैन श्वेतांबर संघ
श्री सुरेशगुरुजी M. 98441 04021
नं.4, Old No. 38, फ्लोर, रंगराव रोड, शंकरपुरम्, बैंगलुर-560 004. (कर्नाटक)
राजेश मो. 9241672979

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 2500/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक प्राप्ति स्थान

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, 47, कोलभाट लेन, ऑ. नं. 5, डॉ. एम.बी. वेल्कर लेन, ग्राउंड फ्लोर, मुंबई-400 002. ✆ 2203 45 29 Mob.: 98920 69330

(2) दिव्य संदेश प्रचारक
प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा, बेंगलोर-560 004. ✆ (O.) 4124 7478 M. 8971230600

(3) राहुल वैद, C/o. अरिहंत मेटल कं., 4403, लोटन जाट गली, पहाजी धीरज, सदर बाजार, दिल्ली-110 006. M. 9810353108

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकाशक की कलम से...

शत्रुंजय महातीर्थ की धन्यधरा पर पर्वाधिराज पर्युषण महापर्व के शुभारंभ के शुभदिन दीक्षा के दानवीर **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के दीक्षा शताब्दी वर्ष में उन्हीं के तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवी सदी के महानयोगी, नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक, निःस्पृह शिरोमणि, वात्सल्यमूर्ति **पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक, मरुधररत्न **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित **157वीं पुस्तक 'जैन-शब्द-कोष'** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

पूज्य गुरु भगवंतों के प्रवचनों में जैन धर्म के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक है परंतु उन शब्दों के अर्थ का सम्यग् बोध नहीं होने से या तो श्रोता प्रवचन के मर्म का समझ नहीं पाते है अथवा कई बार उसका विपरीत अर्थ भी कर लेते है ।

पूज्यश्री के दिल में कई वर्षों से यह भावना थी कि यदि जैन धर्म के प्रचलित शब्दों के अर्थ के संग्रह की पुस्तक प्रकाशित हो तो कितना अच्छा हो ! बस, उनके अन्तर्मन में रही हुई भावना आज साकार होने जा रही है उसका हमें अत्यंत ही हर्ष है ।

आज से 5 वर्ष पूर्व आदीश्वरधाम में महामंगलकारी उपधान तप की समाप्ति के बाद पूज्यश्री की 15 दिन तक महावीर धाम में स्थिरता रही, उसी स्थिरता दरम्यान गुर्जर भाषा में प्रकाशित अनेक पुस्तकों का आलंबन लेकर पूज्यश्री ने प्रस्तुत पुस्तक का आलेखन किया है । हमें आत्म विश्वास है कि पूज्यश्री के पूर्व प्रकाशनों की भांति प्रस्तुत **'कृति'** भी हिन्दी भाषी प्रजा के लिए अवश्य ही उपकारक बनेगी ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गोडवाड के गौरव परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम : राजु (राजमल चोपडा)
माता का नाम : चंपाबाई
पिता का नाम : छगनराजजी गेनमलजी चोपडा
जन्म भूमि : बाली (राज.)
जन्म तिथि : भादो सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-58
बचपन में धार्मिक अभ्यास : पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
दीक्षा संकल्प (ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार) : 18 जुन 1974
व्यवहारिक अभ्यास : 1st year B.Com.
(पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज-फालना-राज.)
दीक्षा दाता : पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव : अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन : माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दिनांक 2-2-1977
समुदाय : शासन प्रभावक पू.आ. श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.
दीक्षा दिन विशेषता : भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोडा : 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल : न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र : 18 वर्ष 4 मास
मुमुक्षु अवस्था में गुरु सान्निध्य : 1½ वर्ष
प्रथम चातुर्मास : संवत् 2033 पाटण
पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सानिध्य में

◆ **अभ्यास** : प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषा बोध** : हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम वचन प्रारंभ** : फागुण सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ** : बाली संवत् 2038 (**पू.आ. श्री राजतिलकसूरीश्वरजी म.सा.** के सान्निध्य में)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन** : बाली, पाली, रतलाम, पाटण, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर),

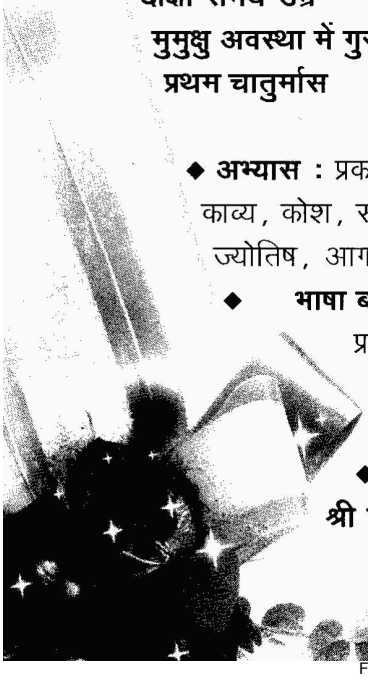

For Private and Personal Use Only

सुरेन्द्रनगर, रानीगांव, पाली, पिंडवाडा, उदयपूर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड, चिंचवड, भायंदर, पूना, येरवडा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (शिवाजी चोक) कल्याण-भिवंडी (जयणामंगल) रोहा, भायंदर, पालीताणा आदि

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि

◆ **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपूर पंचतीर्थी'

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरीयाजी, गिरधनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड से कुंभोज, सोलापूर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर आदि

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन : ''वात्सल्य के महासागर''** संवत् 2038

◆ **प्रकाशित पुस्तकें :** 157

◆ **संस्कृत साहित्य संपादन-सह संपादन :** सिद्ध हैमशब्दानुशासनम्-बृहद्वृत्ति लघु न्यास सह, पांडवचरित्र आदि

◆ **अन्य संपादन :** भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा का इतिहास-भाग 1-2-3

◆ **अनुवाद संपादन :** श्राद्धविधि, शांतसुधारस तथा पूज्य गुरूदेवश्री की 15 पुस्तकें, मंत्राधिराज आदि तथा विजयानंदसूरिजी कृत 'नवतत्व' ।

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मुनि श्री उदयरत्नविजयजी, मुनि केवलरत्नविजयजी, मुनि कीर्तिरत्नविजयजी, मुनि प्रशांतरत्नविजयजी, मुनि शालिभद्रविजयजी म.**

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो बार), कर्जत, विक्रोली, मोहना पालीताणा आदि...

गणि पदवी : वैशाख वदी-6, संवत् 2055 दि. 7-5-99 चिंचवड गांव-पूना.

पंन्यास पदवी : कार्तिक वदी 5, संवत् 2061, दि. 2-12-2004 वालकेश्वर, मुंबई.

आचार्य पदवी : पोष वदी-1, संवत् 2067, दि. 20-1-2011 थाणा (महा.)

सूरिमंत्र पीठिका आराधना : कस्तुरधाम, पालीताणा वि.सं. 2068

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रवचन प्रभावक मरुधररत्न-हिन्दी साहित्यकार पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का बहुरंगी-वैविध्यपूर्ण साहित्य

तत्त्वज्ञान विषयक

		S.No.
1.	जैन विज्ञान	38
2.	चौदह गुणस्थान	96
3.	आओ ! तत्त्वज्ञान सीखें	79
4.	कर्म विज्ञान	102
5.	नव तत्त्व-विवेचन	122
6.	जीव विचार विवेचन	123
7.	तीन-भाष्य	127
8.	दंड़क-विवेचन	135
9.	ध्यान साधना	153

प्रवचन साहित्य

		S.No.
1.	मानवता तब महक उठेगी	8
2.	मानवता के दीप जलाएं	9
3.	महाभारत और हमारी संस्कृति-भाग-1	18
4.	महाभारत और हमारी संस्कृति-भाग-2	19
5.	रामायण में संस्कृति का अमर संदेश-भाग-1	27
6.	रामायण में संस्कृति का अमर संदेश-भाग-2	28
7.	आओ ! श्रावक बने !	45
8.	सफलता की सीढ़ियाँ	53
9.	नवपद प्रवचन	56
10.	श्रावक कर्तव्य-भाग-1	74
11.	श्रावक कर्तव्य-भाग-2	75
12.	प्रवचन रत्न	78
13.	प्रवचन मोती	72
14.	प्रवचन के बिखरे फूल	103
15.	प्रवचनधारा	67
16.	आनन्द की शोध	33
17.	भाव श्रावक	85
18.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	97
19.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	104
20.	संतोषी नर-सदा सुखी	87
21.	जैन पर्व-प्रवचन	115
22.	गुणवान् बनों	126
23.	बिखुरलेले प्रवचन मोती	117
24.	सुखी जीवन की चाबियाँ	137
25.	पांच प्रवचन	138
26.	जीवन शणगार प्रवचन	148

धारावाहिक कहानी

		S.No.
1.	कर्मन् की गत न्यारी	6
2.	जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है	10
3.	आग और पानी भाग-1-2	34-35
4.	मनोहर कहानियाँ	50
5.	ऐतिहासिक कहानियाँ	57
6.	प्रेरक-कहानियाँ	91
7.	सरस कहानियाँ	111
8.	मधुर कहानियाँ	98
9.	सरल कहानियाँ	142
10.	तेजस्वी सितारें	58
11.	जिनशासन के ज्योतिर्धर	81
12.	महासतियों का जीवन संदेश	93
13.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	105
14.	पारस प्यारो लागे	99
15.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	25
16.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	63
17.	महान् चरित्र	129
18.	प्रातःस्मरणीय महापुरुष-1	149
19.	प्रातःस्मरणीय महापुरुष-2	150
20.	प्रातःस्मरणीय महासतियाँ-1	151
21.	प्रातःस्मरणीय महासतियाँ-2	152

युवा-युवति प्रेरक

		S.No.
1.	युवानो ! जागो	12
2.	जीवन की मंगल यात्रा	17
3.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	20
4.	युवा चेतना	23
5.	युवा संदेश	26
6.	जीवन निर्माण (विशेषांक)	30
7.	The Message for the Youth	31

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

8.	How to live true life ?	40
9.	The Light of Humanity	21
10.	Youth will Shine then	121
11	Duties towards Parents	95
12.	यौवन-सुरक्षा विशेषांक	32
13.	सन्नारी विशेषांक	59
14.	माता-पिता	77
15.	आहार : क्यों और कैसे ?	82
16.	आहार विज्ञान	39
17.	ब्रह्मचर्य	106
18.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	80
19.	राग म्हणजे आग (मराठी)	108
20.	आई वडीलांचे उपकार	92
21.	अमृत की बुंदे	64
22.	अध्यात्माचा सुगंध	155

अनुवाद-विवेचनात्मक

		S.No.
1.	सामायिक सूत्र विवेचना	2
2.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	3
3.	आलोचना सूत्र विवेचना	4
4.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना	5
5.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	11
6.	आनन्दघन चौबीसी विवेचना	7
7.	अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी	22
8.	श्रावक जीवन-दर्शन	29
9.	भाव सामायिक	107
10.	श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन	94
11.	भाव-चैत्यवंदन	120
12.	विविध-पूजाएँ	125
13.	भाव प्रतिक्रमण-भाग-1	132
14.	भाव प्रतिक्रमण-भाग-2	133
15.	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	134
16.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	144
17.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	145
18.	श्रावक आचार दर्शक	154

विधि-विधान उपयोगी

		S.No.
1.	भक्ति से मुक्ति	41
2.	आओ ! प्रतिक्रमण करें	42
3.	आओ ! श्रावक बने	45
4.	हंस श्राद्धव्रत दीपिका	48
5.	Chaitya-Vandan Sootra	52
6.	विविध-देववंदन	55
7.	आओ ! पौषध करें	71
8.	प्रभु दर्शन सुख संपदा	84
9.	आओ ! पूजा पढाएँ !	88
10.	Panch Pratikraman Sootra	61
11.	शत्रुंजय यात्रा	36
12.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	73
13.	आओ ! उपधान-पौषध करें	109
14.	विविध-तपमाला	128
15.	आओ ! भावायात्रा करें	130
16.	आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें	136

अन्य प्रेरक साहित्य

		S.No.
1.	वात्सल्य के महासागर	1
2.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	15
3.	अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव	44
4.	बीसवीं सदी के महान् योगी	100
5.	महान ज्योतिर्धर	86
6.	मिच्छामि दुक्कडम्	60
7.	क्षमापना	69
8.	सवाल आपके जवाब हमारे	37
9.	शंका और समाधान-1	66
10.	शंका-समाधान-भाग-2	118
11.	शंका-समाधान-भाग-3	147
12.	जैनाचार विशेषांक	47
13.	जीवन ने तुं जीवी जाण	62
14.	धरती तीरथ'री	68
15.	चिंतन रत्न	114
16.	बीसवीं सदी के महीन् योगी की अमर-वाणी	101
17.	महावीरवाणी	112

वैराग्यपोषक साहित्य

		S.No.
1.	मृत्यु-महोत्सव	51
2.	श्रमणाचार विशेषांक	54
3.	सद्गुरु-उपासना	113
4.	चिंतन-मोती	90
5.	मृत्यु की मंगल यात्रा	16
6.	प्रभो ! मन-मंदिर पधारो	110
7.	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचन भाग-1	13
7.	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचन भाग-2	14
9.	भव आलोचना	124
10.	वैराग्य शतक	140
11.	इन्द्रिय पराजय शतक	156

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ नं.	क्र.	विषय	पृष्ठ नं.
1.	अ	1	17.	न	44
2.	आ	13	18.	प	51
3.	इ	16	19.	फ	60
4.	उ	17	20.	ब	60
5.	क	22	21.	भ	63
6.	ख	26	22.	म	65
7.	ग	26	23.	य	68
8.	घ	29	24.	र	69
9.	च	30	25.	ल	71
10.	छ	32	26.	व	74
11.	ज	33	27.	श	80
12.	ट	36	28.	ष	82
13.	त	36	29.	स	82
14.	थ	39	30.	ह	88
15.	द	39	31.	क्ष	88
16.	ध	42			

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुरुवंदना

जिनशासन के महान् ज्योतिर्धर
स्व. पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय
रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

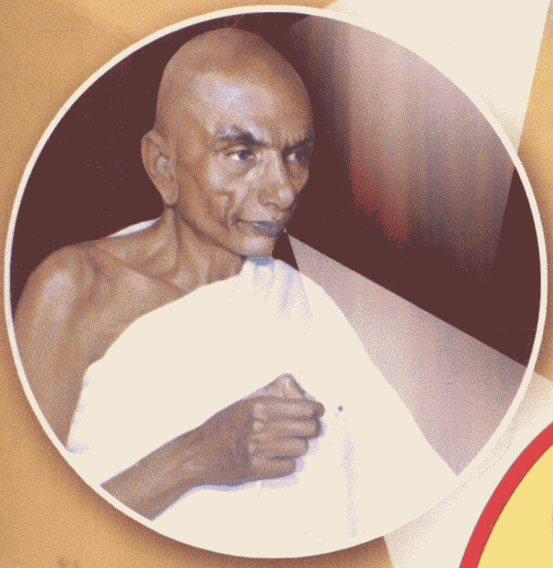

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद
पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी
गणिवर्य

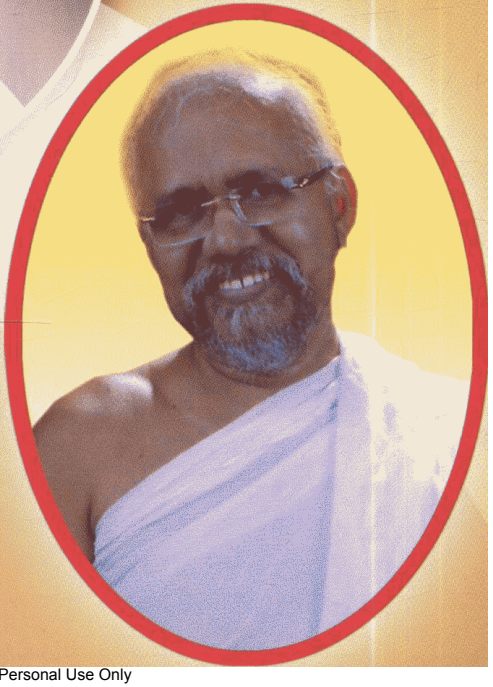

प्रवचन प्रभावक परम पूज्य
आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

For Private and Personal Use Only

प्रकाशन सहयोगी

रतनचंदजी

ताराबाई

पूज्य पिताजी **शा. रतनचंदजी सर्वाईमलजी** तथा
पूज्य माताजी **श्रीमती ताराबाई रतनचंदजी तलेसरा-सादडी** (राज. निवासी)
के आत्मश्रेयार्थ

निवास : रमेशकुमार रतनचंदजी तलेसरा, 602, दर्शन टॉवर, लवलेन,
भायखला (E), मुंबई-400 010. Mobile : 9321721971, 33525902

प्रकाशन सहयोगी

स्व. श्रीमती धापूबाई धुडाजी मुथा के स्मरणार्थ

शा. शांतिलालजी

अ.सौ. सुंदरबाई

पूज्य पिताजी-माताजी **अ.सौ. सुंदरबाई शांतिलालजी मुथा** के
तीन उपधान, सिद्धितप आदि की अनुमोदनार्थ

निवेदक :

सुपुत्र : सुरेशकुमार, विजयकुमार
पुत्रवधु : शोभा, मंजु • सुपुत्री : सौ. संगीता सोनाली
सुपौत्र : कीर्तिश, रक्षित सुपौत्रवधु : भावना • सुपौत्री : प्रियंका, प्राची
फर्म : **मुथा स्टील**, 6, टिंबर मार्केट, पुणे-42. फोन : 26457784

For Private and Personal Use Only

प्रकाशन सहयोगी

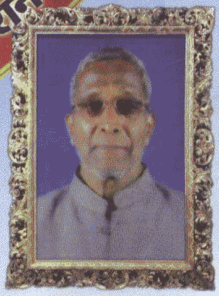

शा. कांतिलालजी

अ.सौ. चंद्रकांताबाई

सम्यक्

पूज्य पिताजी **शा. कांतिलालजी चांदमलजी मुणोत** के शत्रुंजय चातुर्मास

पूज्य माताजी **अ.सौ. चंद्रकांतबाई कांतिलालजी** के सिद्धितप एवं

सम्यक् के शत्रुंजय गिरिराज की 99 यात्रा की अनुमोदनार्थ

निवेदक : पुत्र : कमल, शेखर, शरद, मनीष • पुत्रवधु : सुष्मा, सिंपल, सुनिता, रीना

पौत्र-पौत्री : सम्यक्, संभव, संस्कार, हार्दिक, सौम्य, निधि, ईशा, परी

निवास : 106, रायगढ, आयुर्वेदिक हॉस्पीटल के पास, रतलाम (M.P.)

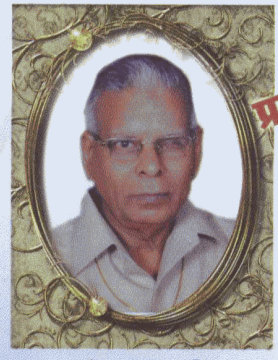

प्रकाशन सहयोगी

मोहनराजजी

अ.सौ. विमलाबाई

पूज्य पिताजी **शा मोहनराजजी पुखराजजी राणावत**

एवं पूज्य माताजी **अ.सौ. विमलाबाई मोहनराजजी राणावत**

के जीवन में हुए सुकृतों की अनुमोदनार्थ

निवेदक : पुत्र-पुत्रवधु : महेशकुमार सरोजबाई, कमलेशकुमार चंदाबाई

पौत्र : जयेश, चिराग • पौत्री : काजल-जतिनजी, दिव्या, अंकिता

पुत्री-जमाई : सुरेखा किरणजी सोलंकी (बिजोवा) • दोहित्री : वर्षा-संजयजी, ममता

फर्म : **मयूरा वॉच**, एम.एन. रोड, कुर्ला (W.), मुंबई.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

1. अरिहंत :- तीर्थंकर परमात्मा ! अशोकवृक्ष आदि आठ प्रातिहार्य और ज्ञानातिशय आदि चार अतिशयों से युक्त !

2. अकर्मभूमि :- जहाँ असि, मसि और कृषि का व्यापार नहीं होता है। जहाँ तीर्थंकर आदि पैदा नहीं होते हैं। जहाँ प्रभु का शासन नहीं होता है जहाँ मनुष्य युगलिक के रूप में पैदा होते है। अकर्मभूमि 30 हैं।

3. अकल्पनीय :- आचार विरुद्ध ! जो वस्तु साधु को वहोरना नहीं कल्पता हो, वह अकल्पनीय कहलाती है जैसे - बासी भोजन, कंदमूल आदि साधु के लिए अकल्पनीय है।

4. अकामनिर्जरा :- बाह्य कष्टों को सहन करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवों की निर्जरा को अकामनिर्जरा कहते हैं। इच्छा रहित तप आदि से होनेवाली निर्जरा अकामनिर्जरा कहलाती है।

5. अकिंचन :- जिसके पास कुछ भी न हो अर्थात् सभी प्रकार के बाह्य परिग्रह का त्याग करनेवाला।

6. अक्षत :- चावल ! क्षत अर्थात् खंडित। अक्षत अर्थात् जो खंडित न हो।

7. अक्षय स्थान :- मोक्ष। जो कभी क्षय होनेवाला न हो ऐसा स्थान।

8. अक्षर :- जिसका कभी नाश न हो। स्वर और व्यंजन को भी अक्षर कहा जाता है।

9. अगार :- घर।

10. अणगार :- घर रहित साधु को अणगार कहते हैं।

11. अगुरुलघु :- गुरु = भारी, लघु = हल्का। जो भारी भी न हो और हल्का भी न हो, उसे अगुरुलघु कहते हैं।

12. अघाती कर्म :- जो कर्म आत्मा के मूल गुणों का घात नहीं करते हैं वे अघाती कर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र अघाती कर्म हैं।

13. अचक्षुदर्शन :- चक्षु अर्थात् आँख ! आँख सिवाय अन्य इन्द्रियों

For Private and Personal Use Only

से होनेवाले दर्शन को अचक्षुदर्शन कहते हैं ।

14. अचल :- जो कभी चलित न हो, वह अचल कहलाता है । जैसे- इंद्र का सिंहासन अचल होता है । मोक्ष में रही आत्मा का पद अचल होता है ।

15. अर्चना :- पूजा ।

16. अचित्त :- जीव रहित वस्तु को अचित्त कहा जाता है ।

17. अचिंत्य शक्ति :- जिसकी कल्पना भी न की जा सके ऐसी शक्ति को अचिंत्य शक्ति कहते हैं ।

18. अच्युत :- 12 वें वैमानिक देवलोक का नाम । जो अपने स्वरूप से च्युत न होता हो, उसे भी अच्युत कहते हैं ।

19. अनशन :- आहार के इच्छापूर्वक त्याग को अनशन कहते हैं ।

20. अचेलक :- वस्त्र का संपूर्ण त्याग ! तीर्थंकरों के शरीर पर जब तक देवदूष्य होता है, तब तक वे सचेलक कहलाते हैं और जब वस्त्र चला जाता है, तब वे अचेलक कहलाते हैं ।

21. अणिमा :- एक प्रकार की लब्धि, जिसके प्रभाव से अपनी काया अणु जितनी भी छोटी बनाई जा सकती है ।

22. अणु :- पुद्गल का अविभाज्य अंश, जिसके केवली भी दो विभाग नहीं कर सकते !

23. अणुव्रत :- महाव्रत की अपेक्षा श्रावक के पालन करने योग्य छोटे व्रत ।

24. अतिचार :- व्रत में लगनेवाले छोटे छोटे दोष अतिचार कहलाते हैं ।

25. अतिजात पुत्र :- पिता की अपेक्षा जो बढ़कर हो, वह पुत्र अतिजात कहलाता है ।

26. अतिथि :- साधु-साध्वी ! जो तिथि देखकर नहीं बल्कि हमेशा आराधना करते हों ।

27. अतिथि संविभाग व्रत :- श्रावक को पालन करने योग्य 12 वाँ व्रत । जिसमें पहले दिन श्रावक - श्राविका उपवास पूर्वक पौषध करके दूसरे दिन एकासना करते हैं और साधु - साध्वीजी को वहोराई गई वस्तु को ही एकासने में वापरते हैं ।

For Private and Personal Use Only

28. अतिशय :- ऐसी विशेषता जो अन्य किसी में न हो ! जैसे तीर्थंकरों को जन्म से चार, घातिकर्मों के क्षय से ग्यारह तथा देवकृत उन्नीस अतिशय होते हैं ।

29. अतीन्द्रिय ज्ञान :- इन्दियों की मदद बिना जो ज्ञान होता हो, वह अतीन्द्रिय ज्ञान कहलाता है । अवधिज्ञान आदि अतीन्द्रिय ज्ञान कहलाते हैं ।

30. अदत्तादान :- मालिक की अनुमति बिना वस्तु को उठा लेना, उसे अदत्तादान कहते हैं । इसे चोरी भी कहते हैं ।

31. अधर्मास्तिकाय :- संपूर्ण 14 राजलोक में व्याप्त एक ऐसा द्रव्य जो जीव और पदार्थ को स्थिर रहने में मदद करता है ।

32. अधिकरण :- हिंसा के साधन जैसे - चाकू, छुरी, आदि ।

33. अधिगम सम्यक्त्व :- गुरु के उपदेश आदि द्वारा प्राप्त सम्यक्त्व ।

34. अधोलोक :- मध्यलोक से नीचे सात राजलोक प्रमाण अधोलोक है । सात नरकें आदि अधोलोक में हैं ।

35. अध्यवसाय :- मन का परिणाम (विचार) ।

36. अध्यात्म :- आत्मा को उद्देशित करके की जानेवाली क्रियाएँ ।

37. अध्यात्म शास्त्र :- आत्मा की शुद्धि के उपाय बतानेवाले ग्रन्थ ।

38. अनर्थदंड :- प्रयोजन बिना, निष्कारण की गई हिंसा आदि पाप की प्रवृत्ति को अनर्थदंड कहते हैं अथवा मौज-मजा के लिए जो हिंसा की जाती है, वह भी अनर्थदंड का पाप कहलाता है । जैसे - नाटक, सिनेमा आदि देखना ।

39. अभिलाप्य :- जिन्हें वाणी से व्यक्त किया जा सके ऐसे भावों को अभिलाप्य भाव कहते हैं ।

40. अनभिलाप्य :- वाणी के द्वारा जिन भावों को व्यक्त नहीं किया जा सके, उन्हें अनभिलाप्य कहते हैं ।

41. अनपवर्तनीय :- जो आयुष्य किसी उपघात से बीच में टूटे नहीं, उसे अनपवर्तनीय कहते हैं ।

42. अनंतकाय :- कंदमूल ! जिस एक काया में अनंत जीवों का वास हो, उसे अनंतकाय कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

43. अनंतज्ञान :- केवलज्ञान ! जिस ज्ञान का कहीं अंत न हो, उसे अनंतज्ञान कहते हैं ।

44. अनंत चतुष्टय :- चार घाती कर्मों के नाश से आत्मा में पैदा होनेवाली चार शक्तियाँ - ''1 अनंतज्ञान 2 अनंतदर्शन 3 वीतरागता 4 अनंतवीर्य ।''

45. अनंतर :- अंतर बिना ! किसी भी क्रिया से प्राप्त होनेवाले तात्कालिक फल को अनंतरफल कहते हैं । जैसे - भोजन का अनंतर फल क्षुधा की तृप्ति ।

46. अनादि :- जिस वस्तु का कोई प्रारंभकाल न हो उसे अनादि कहते है ।

47. अनंत :- जिसका कहीं अंत नहीं आता हो, उसे अनंत कहते हैं ।

48. अनादेयनाम कर्म :- जिस कर्म के उदय से व्यक्ति का वचन कहीं भी ग्राह्य नहीं बनता हो !

49. अनाचार :- ली हुई प्रतिज्ञा का सर्वथा भंग हो, उसे अनाचार कहते है ।

50. अनाभोग :- मन की शून्यता से होनेवाली प्रवृत्ति । एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी जीवों को होनेवाले मिथ्यात्व को अनाभोगिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

51. अनित्य भावना :- 12 भावनाओं में सबसे पहली भावना अनित्य भावना है । ''जगत् के सभी जीव और पदार्थ विनाशी हैं, आयुष्य क्षणभंगुर है'' इस प्रकार के चिंतन को अनित्य भावना कहते हैं ।

52. अनुग्रह :- गुरु की कृपा । परमात्मा की कृपा ।

53. अनुप्रेक्षा :- किसी भावना का पुन:पुन: चिंतन ।

54. अनुबंध :- परंपरा ।

55. अनुमान :- लिंग या चिह्न के आधार पर किसी वस्तु के अस्तित्व आदि का निश्चय करना, उसे अनुमान कहते हैं ।

56. अनुमोदना :- किसी के सुकृत की बात सुनकर मन में खुश होना, उसे अनुमोदना कहते हैं ।

57. अनुयोग :- सूत्र के अर्थ के साथ उसके अनुसंधान को अनुयोग

For Private and Personal Use Only

कहते हैं । जैन आगम चार अनुयोगों में विभक्त है- 1 द्रव्यानुयोग 2 गणितानुयोग 3 चरणकरणानुयोग 4 धर्मकथानुयोग ।

58. अनुष्ठान :- धार्मिक क्रिया को अनुष्ठान कहते हैं । आशय के भेद से अनुष्ठान के पाँच प्रकार हैं '' 1 विषानुष्ठान 2 गरल अनुष्ठान 3 अननुष्ठान 4 तद्हेतु अनुष्ठान 5 अमृत अनुष्ठान

59. अनंतानुबंधी :- आत्मा के अनंत संसार को बढ़ानेवाले कषायों को अनंतानुबंधी कहते हैं । इसके चार भेद हैं - 1 अनंतानुबंधी क्रोध 2 अनंतानुबंधी मान 3 अनंतानुबंधी माया 4 अनंतानुबंधी लोभ ।

60. अनुज्ञा :- सम्मति । उपधान और योगोद्वहन की क्रिया में अंत में सूत्र को पढ़ाने की जो अनुमति दी जाती है, उसे अनुज्ञा कहते हैं ।

61. अनेकांत :- एक ही वस्तु में रहे हुए भिन्न-भिन्न धर्मों को भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से स्वीकार करना उसे अनेकांत कहते हैं । जैसे - आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी है । द्रव्य की अपेक्षा आत्मा नित्य है, पर्याय की अपेक्षा आत्मा अनित्य है ।

62. अन्यत्व भावना :- अन्यत्व अर्थात् जुदापना ! आत्मा शरीर से भिन्न है - इस प्रकार की भावना को अन्यत्व भावना कहते हैं ।

63. अप्काय :- पानी स्वरूप जीवों को अप् काय कहते हैं । अप् काय की 7 लाख योनियाँ हैं ।

64. अपवर्ग :- मोक्ष ।

65. अपायविचय :- धर्मध्यान का एक प्रकार है ।

66. अपर्याप्त जीव :- अपर्याप्त नाम कर्म के उदय के कारण जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाते हैं, वे अपर्याप्त जीव कहलाते हैं ।

67. अपुनर्बंधक :- आत्म विकास की ऐसी भूमिका, जहाँ आत्मा मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति (70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम) का अब भविष्य में कभी भी बंध नहीं करेगा, उसे अपुनर्बंधक कहते हैं ।

ऐसी भूमिका पर रही हुई आत्मा के कषाय मंद होते हैं ।

68. अपूर्वकरण :- आत्मा में रही हुई रागद्वेष की तीव्र ग्रंथि के भेद के प्रसंग पर आत्मा में पैदा होनेवाले ऐसे शुभ अध्यवसाय, जो आत्मा में पहले कभी पैदा ही नहीं हुए हों ।

For Private and Personal Use Only

इस अपूर्वकरण के द्वारा आत्मा में स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणी, गुणसंक्रम और अन्य स्थितिबंध आदि होता है ।

सम्यक्त्व की प्राप्ति के पूर्व भी यह अपूर्वकरण होता है और उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी में रही आत्मा भी आठवें गुणस्थान में यह अपूर्वकरण करती है ।

69. अनिवृत्तिकरण :- ग्रंथि भेद के लिए तैयार हुई आत्मा की वह स्थिति जिसमें वह आत्मा सम्यक्त्व पाकर ही रहती है । ग्रंथि का भेद किये बिना वापस लौटे नहीं, ऐसी स्थिति को अनिवृत्तिकरण कहते हैं ।

उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी के अंतर्गत नौवें गुणस्थानक का नाम भी अनिवृत्तिकरण है । अनिवृत्तिकरण में प्रविष्ट सभी आत्माओं के अध्यवसाय एक समान होते हैं ।

70. अप्रतिपाती :- एक बार प्राप्त होने के बाद जो वापस नहीं जाता हो, उसे अप्रतिपाती कहते हैं । पाँचज्ञान में केवलज्ञान को अप्रतिपाती ज्ञान कहा गया है ।

अवधिज्ञान का भी एक प्रकार है, जो अवधिज्ञान आने के बाद वापस जाता न हो तथा केवलज्ञान की प्राप्ति तक रहता हो, उसे अप्रतिपाती अवधिज्ञान कहते हैं ।

71. अप्रत्याख्यानीय :- जो कषाय प्रत्याख्यान - पच्चक्खाण की प्राप्ति में बाधक हो उसे अप्रत्याख्यानीय कषाय कहते हैं । इस कषाय के उदय में देशविरति की प्राप्ति नहीं होती है । इसके भी चार भेद हैं - 1 अप्रत्याख्यानीय क्रोध 2 अप्रत्याख्यानीय मान 3 अप्रत्याख्यानीय माया 4 अप्रत्याख्यानीय लोभ ।

72. अप्रशस्त :- जो प्रशंसनीय न हो अर्थात् आत्मा की ऐसी प्रवृत्ति जिससे आत्मा का अहित हो । उसे अप्रशस्त प्रवृत्ति कहते हैं ।

73. अप्रमत्त :- जहाँ प्रमाद का सर्वथा अभाव हो । 7 वें गुणस्थानक का नाम अप्रमत्त गुणस्थानक है ।

74. अप्राप्यकारी इन्द्रियाँ :- पदार्थ का स्पर्श किये बिना जो इन्द्रियाँ पदार्थ का बोध करती हैं, उन्हें अप्राप्यकारी इन्द्रियाँ कहते हैं । चक्षु और मन अप्राप्यकारी हैं । किसी पदार्थ के चिंतन के लिए मन को उस पदार्थ के पास

For Private and Personal Use Only

जाने की जरूरत नहीं रहती है । किसी पदार्थ को देखने के लिए आंख को उस पदार्थ का स्पर्श करना नहीं पड़ता है । दूर रहकर भी आँख उस पदार्थ को देख सकती है ।

75. अबाधाकाल :- किसी भी कर्म का बंध होने के साथ ही वह कर्म उदय में नहीं आता है । कुछ समय बीतने के बाद ही वह कर्म उदय में आता है, उस काल को अबाधा काल कहते हैं । जैसे कोई कर्म एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम की स्थितिवाला बँधा हो तो वह कर्म 1000 वर्ष बीतने के बाद ही उदय में आएगा ।

76. अब्रह्म :- पुरुष स्त्री की मैथुन क्रिया को अब्रह्म कहते हैं ।

77. अभव्य :- जिस आत्मा में मोक्ष में जाने की योग्यता ही न हो, उसे अभव्य आत्मा कहते हैं ।

78. अभिग्रह :- मन की धारणा अनुसार एक संकल्प । यह अभिग्रह चार प्रकार का होता है - द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । जैसे - भगवान महावीर ने अभिग्रह लिया था-

1) द्रव्य से सिर्फ उड़द के बाकुले ही बहोरूंगा ।

2) क्षेत्र से दाता उंबरे पर बैठा हो ।

3) काल से भिक्षाकाल बीत गया है ।

4) भाव से तीन दिन की उपवासी, मस्तक मुंडी हुई राजकुमारी हो, उसके हाथ - पाँव में बेड़ी हो, आँखों में आँसू हो । घर के द्वार पर बैठी हो ।

प्रभु का यह अभिग्रह 175 दिन के बाद पूर्ण हुआ था ।

79. अभिनिवेश :- तत्त्व-अतत्त्व को जानने पर भी स्वकल्पित किसी वस्तु के झूठे आग्रह को अभिनिवेश कहते हैं । 5 प्रकार के मिथ्यात्व में एक आभिनिवेशिक मिथ्यात्व भी है ।

80. अभिषेक :- प्रभु के मस्तक पर दूध - जल के प्रक्षालन को अभिषेक कहते हैं ।

81. अभ्यंतर तप :- जो तप बाहर से दिखाई नहीं देता हो उसे अभ्यंतर तप कहते हैं । इसके छह भेद हैं - 1. प्रायश्चित्त 2. विनय 3. वेयावच्च 4. स्वाध्याय 5. कायोत्सर्ग 6. ध्यान ।

For Private and Personal Use Only

82. अभ्याख्यान :- किसी पर झूठा आरोप लगाना । अठारह पाप स्थानकों में तेरहवें नंबर का पाप है । इस पाप की सजा जीवात्मा को अवश्य भुगतनी पड़ती है ।

जैसे - सीता ने पूर्व भव में निर्दोष साधु महात्मा पर व्यभिचार का झूठा कलंक लगाया था, इस पाप के कारण निर्दोष होने पर भी सीता पर झूठा कलंक लगा था ।

83. अभ्युदय :- आबादी, समृद्धि ।

84. अमम :- श्रीकृष्ण की आत्मा । आगामी चौबीसी में अमम नाम का तीर्थंकर बनेगी ।

85. अमर :- देवता का पर्यायवाची नाम । जो कभी मृत्यु नहीं पाता हो, उसे भी अमर कहते हैं ।

86. अमारि प्रवर्तन :- चारों ओर हो रही हिंसा को बंद कराना ! अहिंसा की उद्घोषणा ।

87. अमूढ़दृष्टि :- दर्शनाचार के एक आचार का नाम । तत्त्वत्रयी में निश्चल श्रद्धा को अमूढ़दृष्टि कहते हैं ।

88. अमूर्त :- जिसका कोई आकार न हो, उसे अमूर्त कहते हैं । सिद्ध भगवंत अमूर्त अर्थात् निराकार होते हैं ।

89. अमृत अनुष्ठान :- पाँच प्रकार के अनुष्ठानों में सर्वश्रेष्ठ अनुष्ठान ! इसके 7 लक्षण हैं –

1. मन की एकाग्रता
2. जिनाज्ञा का संपूर्ण पालन
3. भावों की अभिवृद्धि
4. मोक्ष की तीव्र अभिलाषा
5. रोमांचित देह
6. प्रमोद भाव
7. संसार का भय

90. अमोघ देशना :- जो देशना कभी निष्फल नहीं जाती हो, उसे अमोघ देशना कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

91. अयोगी :- मन, वचन और काया के योगों का सर्वथा अभाव हो, वह अयोगी अवस्था कहलाती है । चौदहवें गुणस्थानक का नाम अयोगी गुणस्थान है । इस गुणस्थानक का काल बहुत ही अल्प है । इस गुणस्थान के बाद आत्मा अवश्य ही मोक्षपद प्राप्त करती है ।

92. अरति :- प्रतिकूल वस्तु या व्यक्ति को प्राप्तकर मन में होनेवाले उद्वेग को अरति कहते हैं ।

93. अर्थदंड :- स्वयं के जीवन निर्वाह अथवा अपने आश्रितों के जीवन निर्वाह के लिए जो हिंसा आदि पाप किए जाते हैं, वे अर्थदंड कहलाते हैं ।

94. अर्धनाराच :- छह प्रकार के संघयणों में से तीसरा संघयण ।

95. अर्हद् भक्ति :- परमात्मा की भक्ति ।

96. अलीक वचन :- झूठा वचन ।

97. अवधिज्ञान :- मन और इन्द्रियों की मदद बिना होनेवाला आत्म प्रत्यक्ष ज्ञान । इस ज्ञान द्वारा मर्यादित क्षेत्र में रहे पदार्थों का ज्ञान होने से इस ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं ।

यह अवधिज्ञान दो प्रकार से होता है–

1. भवप्रत्यय :- देव तथा नरक के जीवों को यह ज्ञान जन्म से ही होता है-उन्हें होनेवाला अवधिज्ञान भवप्रत्यय कहलाता है ।

2. गुणप्रत्यय :- रत्नत्रयी की आराधना - साधना के फलस्वरूप मनुष्य तिर्यंचों को होनेवाला अवधिज्ञान गुणप्रत्यय कहलाता है ।

98. अवगाहना :- जीव जितने आकाश प्रदेशों का स्पर्श कर रहा होता है, उसे अवगाहना कहते हैं ।

99. अवसर्पिणी काल :- जिस काल में जीव के आयुष्य, ऊँचाई, बल-बुद्धि आदि तथा वस्तु के शब्द, रूप, रस, गंध आदि में हानि होती जाती हो, उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं । एक अवसर्पिणी में 10 कोड़ाकोड़ी सागरोपम जितना काल होता है ।

100. अवस्वापिनी निद्रा :- तीर्थंकर परमात्मा के जन्म के बाद जब इन्द्र उन्हें मेरु पर्वत पर ले जाते हैं, तब माता के पास से प्रभु को ले जाने के पूर्व इन्द्र, प्रभु की माता को अवस्वापिनी निद्रा प्रदान करते हैं । इन्द्र प्रभु

For Private and Personal Use Only

को लेकर जब तक माँ के पास न आए, तब तक माता आराम से सोई हुई होती हैं ।

101. अवक्तव्य :- जिन भावों को वाणी के द्वारा व्यक्त न किया जा सके, उन्हें अवक्तव्य कहते हैं ।

102. अस्तेय व्रत :- चोरी के त्याग को अस्तेयव्रत कहते हैं ।

103. अंग प्रविष्ट :- द्वादशांगी के भीतर रहे हुए श्रुत को अंग प्रविष्ट कहा जाता है ।

104. अंगबाह्य :- जिस सूत्र के रचयिता गणधर सिवाय अन्य आचार्य भगवंत हों । उत्तराध्ययन आदि सूत्र अंग बाह्य कहलाते हैं ।

105. अव्यय :- जिसका कभी व्यय अर्थात् नाश नहीं होता हो, उसे अव्यय कहते हैं ।

106. अशरीरी :- जिसका अपना कोई शरीर न हो, उसे अशरीरी कहते हैं । सिद्ध भगवंत अशरीरी कहलाते हैं, क्योंकि उनके पाँच में से एक भी शरीर नहीं होता है ।

107. अव्याबाध सुख :- जिस सुख में लेश भी बाधा नहीं आती हो, उस सुख को अव्याबाध सुख कहते हैं । वेदनीय कर्म के संपूर्ण क्षय से सिद्ध भगवंतों को होनेवाला सुख अव्याबाध सुख कहलाता है ।

108. अष्टमंगल :- मंगलसूचक ऐसी आठ आकृतियाँ - 1 स्वस्तिक 2 कलश 3 नंदावर्त 4 मत्स्ययुगल 5 दर्पण 6 श्रीवत्स 7 भद्रासन 8 वर्धमान ।

109. अष्टाह्निक महोत्सव :- परमात्म भक्ति निमित्त आयोजित आठ दिन के महोत्सव को अष्टाह्निक महोत्सव कहते हैं ।

110. अविरत सम्यग्दृष्टि :- आत्मा में सम्यग् दर्शन के परिणाम हों परंतु चारित्र मोहनीय के कारण विरति के परिणाम का अभाव हो । चौथे गुणस्थानक का नाम अविरत सम्यग्दृष्टि है ।

111. अष्टप्रवचन माता :- श्रमण जीवन के विकास के लिए अष्टप्रवचन माताओं का पालन करना होता है । पाँच समिति और तीन गुप्ति को अष्टप्रवचनमाता कहते हैं ।

पाँच समिति 1. ईर्यासमिति 2. भाषासमिति 3. एषणासमिति 4. आदानभंडमत्त निक्षेपणा समिति 5. पारिष्ठापनिका समिति ।

For Private and Personal Use Only

तीन गुप्ति :- 1. मनगुप्ति 2. वचनगुप्ति 3. कायगुप्ति ।

112. अशन :- भोजन का एक प्रकार ! भोजन के चार प्रकार हैं अशन, पान, खादिम और स्वादिम । जिसे खाने से शीघ्र भूख शांत हो, उसे अशन कहते हैं । जैसे - अनाज, मिठाई आदि ।

113. अष्टमहासिद्धि :- रत्नत्रयी की आराधना के फलस्वरूप आत्मा में पैदा होनेवाली विशेष लब्धियाँ, सिद्धियाँ, ये आठ हैं ।

1. **अणिमा** :- 2 महिमा 3 गरिमा 4 लघिमा 5 प्राप्ति 6 प्राकाम्य 7 ईशित्व 8 वशित्व ।

114. अष्टापद :- एक पर्वत का नाम ! ऋषभदेव परमात्मा की निर्वाण भूमि ! इस पर्वत की आठ सीढ़ियाँ होने के कारण इसे अष्टापद कहते हैं । भरत महाराजा ने यहाँ पर विशाल सिंहनिषद्यानाम के जिनालय का निर्माण कराया था । वर्तमान में यह तीर्थ अदृश्य है ।

115. असंज्ञी :- जिन जीवों के मन न हो, वे असंज्ञी कहलाते हैं ।

116. अव्यवहार राशि :- जो जीव अभी तक एक बार भी सूक्ष्म निगोद में से बाहर नहीं निकले हों, वे अव्यवहार राशि के जीव कहलाते हैं ।

117. अस्तिकाय :- अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह ! प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं । इसके पाँच भेद हैं - 1 धर्मास्तिकाय 2 अधर्मास्तिकाय 3 आकाशास्तिकाय 4 पुद्गलास्तिकाय और 5 जीवास्तिकाय ।

118. अहोरात्रि :- रात और दिन ।

119. अहंकार :- ' मैं कुछ हूँ' ऐसा अहं भाव ! I am something ।

120. अंतकृत केवली :- अपने आयुष्य के अंतिम अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्तकर थोड़े ही समय में मोक्ष में जानेवाले अंतकृत केवली कहलाते हैं ।

121. अंतःकरण :- मन ।

122. अन्तर्द्वीप :- समुद्र के भीतर आए द्वीप को अन्तर्द्वीप कहते हैं । जंबुद्वीप में हिमवंत पर्वत और शिखरी पर्वत के दोनों किनारों पर दो - दो दाढ़ाओं पर 7 - 7 द्वीप आए हुए हैं । 8 दाढ़ाओं पर 7 - 7 द्वीप आने से कुल 56 अन्तर्द्वीप कहलाते हैं !

123. अन्तर्मुहूर्त :- दो समय से लेकर 48 मिनिट में एक समय कम हो, उस काल को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

124. अंगपूजा :- प्रभु के शरीर का स्पर्श करके जो पूजा की जाती है उसे अंगपूजा कहते हैं । जल, चंदन और पुष्पपूजा अंगपूजा कहलाती है ।

125. अंतरंग शत्रु :- आत्मा के भीतर रहे शत्रु अंतरंग शत्रु कहलाते हैं । ये शत्रु बाहर से दिखाई नहीं देते हैं । राग - द्वेष - मोह-कषाय आदि आत्मा के अंतरंग शत्रु हैं ।

126. अंडज :- अंडे से पैदा होनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों को अंडज कहते हैं ।

127. अंतराय कर्म :- दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में अंतराय पैदा करनेवाले कर्म को अंतराय कर्म कहते हैं ।

128. अक्षयतृतीया :- वैशाख शुक्ला तृतीया को अक्षयतृतीया कहते हैं । दीक्षा अंगीकार करने के बाद ऋषभदेव प्रभु के 400 उपवास की दीर्घ तपश्चर्या का पारणा इस दिन हुआ था । इस दिन से इस अवसर्पिणी काल में श्रेयांसकुमार के हाथों से सुपात्रदान का शुभारंभ हुआ था ।

129. अचरमावर्त :- जिस आत्मा का संसार परिभ्रमण एक पुद्गल परावर्तकाल से भी अधिक बाकी हो, उसे अचरमावर्ती आत्मा कहते हैं ।

130. अनिकाचित कर्म :- बँधे हुए जिन कर्मों में परिवर्तन हो सकता हो वे अनिकाचित कर्म कहलाते हैं ।

131. अन्यलिंग सिद्ध :- जैन साधु के वेष को छोड़कर अन्य लिंग द्वारा मोक्ष पद पानेवाले अन्यलिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

132. अष्टांग योग :- योग शास्त्र में प्रसिद्ध आठ अंगवाला एक योग (आठ अंग-यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) ।

133. असंयम :- पांच इन्द्रियों के ऊपर जिसका नियंत्रण नहीं है ।

134. असिधाराव्रत :- तलवार धार पर चलने के समान अत्यंत ही कठिन व्रत !

For Private and Personal Use Only

2

'आ'

135. आयंबिल :- जिस तप में छ विगई , हरि वनस्पति तथा सूखे मेवे आदि सभी प्रकार की स्वादिष्ट वस्तु का त्याग होता है और सिर्फ नीरस आहार दिन में एक ही बार, एक ही बैठक में लिया जाता है, उसे आयंबिल कहते हैं ।

136. आकाश प्रदेश :- आकाश द्रव्य का अविभाज्य अंश ।

137. आकाश :- खाली जगह, अवकाश ।

138. आक्रोश :- क्रोध ।

139. आक्षेपिणी कथा :- ऐसी धर्मकथा जिससे श्रोताओं को तत्त्व के प्रति आकर्षण हो ।

140. आगम :- जैन धर्म के मुख्य आधारग्रंथ आगम कहलाते हैं । ये आगम कुल 45 हैं - 1. ग्यारह अंग 2. बारह उपांग 3. दस पयन्ना 4. छह छेदसूत्र 5. चार मूल सूत्र 6. नंदी - अनुयोगद्वार ।

141. आचार्य :- जैन शासन के तीसरे पद पर प्रतिष्ठित । जो स्वयं पंचाचार का पालन करते हैं और दूसरों से करवाते है ।

142. आतप नामकर्म :- इस कर्म के उदय से स्वयं का शरीर ठंडा होने पर भी जो गर्म प्रकाश देता है । जैसे - सूर्यकांतमणि, सूर्यविमान ।

143. आतापना :- सूर्य की गर्मी आदि को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना । यह एक प्रकार का परिषह है ।

144. आगार :- अपवाद, छूट । कायोत्सर्ग और पच्चक्खाण में कई छूटें रखी जाती हैं, उन्हें आगार कहते हैं ।

145. आत्मा :- चेतना लक्षणवाला पदार्थ ! जिसमें ज्ञान - दर्शन आदि गुण रहे हुए हैं ।

146. आदेय नामकर्म :- पुण्य प्रकृति का एक भेद । इस कर्म के उदय से व्यक्ति का बोला हुआ शब्द अन्य सभी को ग्राह्य बनता है ।

147. आधाकर्मी :- साधु-साध्वी के लिए स्पेशियल बनाए हुए आहार को आधाकर्मी आहार कहते हैं ।

148. आयुष्यकर्म :- जिस कर्म के उदय से जीव एक शरीर में अमुक समय तक रह सकता है और जीता है ।

149. आर्तध्यान :- अपने सुख - दुःख के विषय में जो दुर्ध्यान, अशुभ

For Private and Personal Use Only

ध्यान किया जाता है, उसे आर्तध्यान कहते हैं । इसके चार भेद हैं - `` 1 इष्ट के संयोग का चिंतन 2 अनिष्ट के वियोग का चिंतन 3 शारीरिक रोग की चिंता करना 4 परलोक में राज्य आदि की प्राप्ति का नियाणा करना ।

150. आर्जव :- सरलता । दस प्रकार के यतिधर्म में तीसरा भेद ।

151. आलोचना :- जाने-अनजाने में हुए पापों को गुरु समक्ष निवेदन करना ।

152. आवलिका :- असंख्य समयों की एक आवलिका होती है । 48 मिनिट में 1,67,77,216 आवलिकाएँ होती हैं ।

153. आवश्यक :- सुबह - शाम साधु - साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं को अवश्य करने योग्य कर्तव्य ! आवश्यक छह हैं - 1. सामायिक 2. चउविसत्थो 3. वंदन 4. प्रतिक्रमण 5. कायोत्सर्ग 6. पच्चक्खाण ।

154. आशातना :- जो अपने ज्ञान आदि गुणों का नाश करे, उसे आशातना कहते हैं । जैसे 1. ज्ञान की आशातना से ज्ञान गुण का नाश होता है । 2. परमात्मा की आशातना से दर्शन का नाश होता है । 3. धर्म की आशातना से चारित्रगुण का नाश होता है ।

155. आहारक शरीर :- चौदह पूर्वधर महर्षि अपनी आहारक लब्धि के प्रभाव से आहारक वर्गणा के पुद्गलों से आहारक शरीर बनाते हैं जो अन्तर्मुहूर्त तक रहता है । यह शरीर तीर्थंकर को प्रश्न पूछने के लिए या उनकी ऋद्धि देखने के लिए आहारक लब्धिधारी चौदहपूर्वी बनाते हैं ।

156. आहार पर्याप्ति :- किसी भी जन्म को धारण करते ही आत्मा उस जन्म के योग्य शरीर बनाती है । इस शरीर का निर्माण आहार में से ही होता है । छह पर्याप्तियों में सबसे पहली पर्याप्ति आहार पर्याप्ति ही है ।

157. आस्रव :- आत्मा में कर्म के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं । इसके 42 भेद हैं ।

158. आठ रुचक प्रदेश :- जीव के असंख्य आत्मप्रदेशों में आठ प्रदेश कर्म से सर्वथा आवरण रहित होते हैं । ये रुचक प्रदेश कहलाते हैं ।

159. आहार संज्ञा :- मोहजन्य आहार ग्रहण करने की तीव्र इच्छा को आहार संज्ञा कहते हैं ।

160. आवीचि मरण :- आयुष्य का जो समय बीत गया, वह आवीचि मरण कहलाता है । यह मरण प्रतिसमय होता रहता है ।

For Private and Personal Use Only

161. आसन्न भव्य :- जल्दी मोक्ष में जाने के लिए योग्य जीव ।

162. आज्ञा विचय :- धर्म ध्यान का पहला भेद । जिसमें प्रभु की आज्ञा के संबंध में चिंतन-मंथन होता है ।

163. आनुगमिक :- अवधिज्ञान का एक प्रकार । जीव जहाँ जाय, वहाँ पीछे पीछे जो अवधिज्ञान साथ में चलता है वह आनुगमिक कहलाता है ।

164. आकाशास्तिकाय :- जैन दर्शन में प्रसिद्ध छ द्रव्यों में से एक द्रव्य ! जड़ व चेतन पदार्थ को जगह देने का कार्य, यह द्रव्य करता है ।

165. आकाशगामिनी विद्या :- जिस विद्या (लब्धि) के बल से जीव आकाश में उड सकता है, उसे आकाशगामिनी विद्या कहते है । विद्याचरण मुनियों के पास यह लब्धि होती है ।

166. आगम व्यवहारी :- केवलज्ञानी, चौदहपूर्वधर, दशपूर्वधर आदि के व्यवहार को आगम व्यवहारी कहा जाता है ।

167. आकुंचन प्रसारण :- शारीरिक प्रतिकूलता के कारण एकासना आदि करते समय पांव आदि को संकुचित करना अथवा फैलाना ।

168. आग्नेयी :- चार विदिशाओं में से एक विदिशा अग्नि कोण (पूर्व और दक्षिण के बीच) ।

169. आज्ञाचक्र :- तंत्र शास्त्र में प्रसिद्ध दो भृकुटी के बीच के चक्र को आज्ञा चक्र कहते है ।

170. आजानुबाहू :- खडे रहने पर जिनके दोनों हाथ घुटनों तक पहुँचते हो, उसे आजानुबाहु कहते है ।

171. आज्ञाविचय :- चार प्रकार के धर्मध्यान में से एक धर्मध्यान जिस ध्यान में प्रभुकी आज्ञाओं के बारे में ध्यान किया जाता है ।

172. आत्मा :- जीव ! जिसमें चेतना हो आत्मा कहते है । आत्मा देह व्यापी है । आत्मा के निकल जाने पर शरीर निश्चेष्ट हो जाता है ।

आत्मा अरुपी है, अतः आंखों से दिखाई नहीं देती है ।

173. आध्यात्मिक :- जिसमें आत्मा संबंधी विचार-विमर्श आदि हो, उसे आध्यात्मिक ज्ञान कहते है ।

174. आप्तवचन :- राग आदि दोषों से रहित सर्वज्ञ कथित आगमों को आप्तवचन कहते है ।

175. आर्त्तध्यान :- शारीरिक रोग आदि की चिंता को आर्त्तध्यान कहते है, इस ध्यान में स्वयं के दुःखों का ही विचार होता है ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

3

'इ'

176. इन्द्रिय :- इन्द्र अर्थात् जीव । जीव को जानने के चिह्न को इन्द्रिय कहते हैं । ये इन्द्रियाँ ज्ञान और क्रिया की साधन हैं । इन्द्रियाँ पाँच हैं । 1. स्पर्शनेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4. चक्षुरिन्द्रिय 5. श्रोत्रेन्द्रिय ।

177. इत्वरकथित :- अल्पकाल के लिए । नवकारसी आदि अल्पकाल के लिए पच्चक्खाण होने से इत्वरकथित कहलाते हैं । थोड़े समय के लिए जो गुरु की स्थापना की जाती है, वह इत्वरकथित कहलाती है ।

178. इष्ट :- जो मन को पसंद हो, वह इष्ट कहलाता है ।

179. इन्द्रिय पर्याप्ति :- सप्त धातु रुप में परिणत पुद्गलों को इन्द्रिय के रुप में परिणत करने की शक्ति को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं ।

180. ईर्या समिति :- जीवों की विराधना न हो, इस प्रकार यतनापूर्वक चलना ।

पाँच समितियों में सबसे पहली समिति ईर्या समिति है ।

181. इहलोकभय :- इस लोक संबंधी भय ।

182. ईहा :- मतिज्ञान का एक प्रकार ।

183. ईषत् प्राग्भार :- सिद्ध शिला का नाम है । यह स्फटिक जैसी पृथ्वी है और कुछ झुकी हुई है ।

184. इक्षुकार पर्वत :- घातकी खंड और पुष्करद्वीप में दक्षिण - उत्तर की ओर आए हुए दो - दो पर्वत, जो इस द्वीप के दो भाग करते हैं ।

185. इन्द्रिय सुख :- इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की प्राप्ति से होनेवाला सुख इन्द्रियसुख कहलाता है ।

186. इन्द्रिय गोचर :- इन्द्रियों से होनेवाले शब्द आदि के ज्ञान को इन्द्रिय गोचर ज्ञान कहते है ।

187. ईर्या पथिकी :- ग्यारहवें-बारहवें और तेरहवें गुण स्थानक में सिर्फ योग के निमित्त होनेवाले शाता वेदनीय कर्म के बंध में कारणभूत एक क्रिया ।

188. ईशान कोण :- उत्तर और पूर्व के बीच रहे कोण को ईशान कोण कहते है ।

For Private and Personal Use Only

4

'उ'

189. उणोदरी :- बाह्य तप का दूसरा भेद । भूख से कम खाना उसे उणोदरी कहते हैं ।

190. उत्सर्पिणी काल :- एक काल चक्र का आधाभाग । इसका प्रमाण 10 कोटाकोटि सागरोपम जितना होता है । इसमें छह आरे होते हैं । इस काल में जीवों का बल आयुष्य आदि बढता जाता है और पुद्गलों के रूप, रस में भी वृद्धि होती जाती है ।

191. उत्सूत्र प्ररूपणा :- जिन आगम से विरुद्ध प्ररूपणा करना ! उत्सूत्र भाषण सबसे भयंकर पाप है, क्योंकि इससे अनेक आत्माएँ उन्मार्गगामी बनती हैं ।

192. उदीरणा :- सत्ता में रहे हुए कर्मों को प्रयत्न विशेष द्वारा समय से पूर्व उदय में लाना । अपक्व कर्मों के पाचन को उदीरणा कहते हैं ।

193. उपधान :- ज्ञानाचार के आठ आचारों में चौथा भेद उपधान है । गुरु के सान्निध्य में रहकर विशिष्ट तप आदि की साधना कर गुरु के मुख से सूत्र आदि ग्रहण करना ।

194. उपधि :- संयमपालन के लिए उपयोगी ज्ञान - दर्शन व चारित्र के उपकरणों को उपधि कहते हैं ।

195. उपपात जन्म :- नारकी व देवताओं के जन्म को उपपात जन्म कहते हैं । इस जन्म में गर्भधारण नहीं होता है ।

196. उपबृंहणा :- गुणीजनों के गुण देखकर उनकी हृदय से अनुमोदना-प्रशंसा करना, उसे उपबृंहणा कहते हैं ।

197. उपभोग :- जिस वस्तु का बार-बार उपयोग - भोग किया जा सके उसे उपभोग कहते हैं । जैसे - वस्त्र, आभूषण, स्त्री आदि ।

198. उपयोग :- जीव का असाधारण गुण उपयोग है । यह उपयोग जीव मात्र में होता है । इसके मुख्य दो भेद हैं- ''1 ज्ञान उपयोग 2 दर्शन उपयोग ।''

For Private and Personal Use Only

199. उपवास :- आत्मा के समीप में रहना उसे उपवास कहते हैं। एक प्रकार का बाह्य तप, जिसमें तीन अथवा चार आहार का त्याग किया जाता है।

200. उपशम सम्यक्त्व :- दर्शन मोहनीय कर्म के उपशमन से जो सम्यक्त्व प्राप्त होता है, उसे उपशम सम्यक्त्व कहते हैं। इस सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीवात्मा को सर्वप्रथम बार इसी सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इस सम्यक्त्व का स्पर्श हो जाने के बाद जीव का संसार परिभ्रमण मर्यादित हो जाता है। एक बार भी इस सम्यक्त्व का स्पर्श हो गया तो वह आत्मा इस संसार में अर्ध पुद्गल परावर्त काल से अधिक नहीं भटकती है।

201. उपशम चारित्र :- उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हुई आत्मा के चारित्र को उपशम चारित्र कहते हैं। चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम से इस चारित्र की प्राप्ति होती है। इस चारित्र के अस्तित्व में किसी भी प्रकार के कषाय का उदय नहीं होता है।

202. उपादान कारण :- जो कारण स्वयं कार्य रूप में परिणत होता हो, उसे उपादान कारण कहते हैं। जैसे - मिट्टी स्वयं घड़ा बनती है अतः मिट्टी यह घड़े का उपादान कारण है।

203. उपशांत मोह गुणस्थानक :- चौदह गुणस्थानकों में ग्यारहवें गुणस्थानक का नाम उपशांत मोह गुणस्थानक है। इस गुणस्थानक में मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियाँ शांत हो गई होती हैं। इस गुणस्थानक में आत्मा अन्तर्मुहूर्त तक ही रह सकती है, उसके बाद आत्मा का अवश्य पतन होता है।

204. उपादेय :- ग्रहण करने योग्य ! जैसे 9 तत्त्वों में पुण्य, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व उपादेय हैं।

205. उपासक :- ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना - साधना करनेवाले साधक को उपासक कहते हैं।

206. उपाश्रय :- गुरु के सान्निध्य में रहकर जिस स्थान पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना साधना की जाती है, उसे उपाश्रय कहते हैं।

For Private and Personal Use Only

207. उत्तरकुरु :- महाविदेह में आया हुआ एक क्षेत्र, जहाँ हमेशा अवसर्पिणीकाल के पहले आरे जैसे भाव होते हैं ।

208. उपकार क्षमा :- क्रोध का प्रसंग उपस्थित होने पर भी **'ये मेरे उपकारी हैं'**-ऐसा जानकर क्रोध नहीं करना अर्थात् क्षमा भाव को धारण करना उसे उपकार क्षमा कहते हैं ।

209. उपांगसूत्र :- 1) अंग सूत्रों के आधार पर रचे गए सूत्रों को उपांग सूत्र कहते हैं । 2) शरीर के अंगों के प्रभेद को उपांग कहते हैं- जैसे-हाथ की अंगुलियाँ उपांग हैं ।

210. उरः परिसर्प :- अपनी छाती के बल पर रेंगकर चलनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच । जैसे - साँप, अजगर आदि

211. उपशमश्रेणी :- कषायों को शांत करते हुए जिस श्रेणी पर चढ़ा जाता है, उसे उपशमश्रेणी कहते हैं । यह उपशमश्रेणी 11 वें गुणस्थानक में समाप्त होती है, वहाँ से आत्मा का अवश्य पतन होता है ।

212. ऊहापोह :- किसी पदार्थ को समझने के लिए जो तर्क - वितर्क किए जाते है, उसे ऊहापोह कहते हैं ।

213. उत्सर्ग :- इसके अनेक अर्थ है-उत्सर्ग का अर्थ त्याग भी होता है-जैसे कायोत्सर्ग (काया + उत्सर्ग) ।

–उत्सर्ग मार्ग अर्थात् मुख्य मार्ग अथवा राज मार्ग ।

214. उन्मार्ग देशना :- वीतराग प्रभुने जो उपदेश दिया है, उससे विरुद्ध उपदेश देना, उसे उन्मार्ग देशना कहते है ।

215. उपसर्ग :- उपद्रव ! भगवान महावीर पर गौशाला, चंडकोशिक, संगम देव आदि ने उपसर्ग किया था ।

216. उपांशु जाप :- पास में बैठे हुए को सुनाई न दे इस प्रकार होठ फडफडाते हुए मंत्र का जाप करना ।

217. ऋजुगति :- सरलगति ! आत्मा एक भव से दूसरे भव में जाती है, तब उसकी दो गतियाँ होती हैं - ऋजुगति और वक्रगति । ऋजुगति यानी बिना मोड़वाली गति । और मोड़वाली गति वक्रगति कहलाती है ।

For Private and Personal Use Only

218. ऋजुता :- सरलता । मन में माया - कपट का अभाव ।

219. ऋद्धिगौरव :- पुण्योदय से प्राप्त संपत्ति का अहंकार ।

220. ऋणानुबंध :- पूर्व भव के संबंधों के कारण इस भव में होनेवाला रागात्मक संबंध । पूर्व भव का ऋणानुबंध हो तो इस भव में हुए संबंध में मेल जमता है ।

221. ऋषभनाराच संघयण :- संघयण अर्थात् शरीर में हड्डियों की रचना । छह प्रकार के संघयण में यह दूसरे प्रकार का संघयण है ।

222. एकत्व भावना :- बारह भावनाओं में चौथी एकत्व भावना है । **'मैं अकेला हूँ, अकेला ही आया हूँ और अकेला ही जानेवाला हूँ'** - इस प्रकार के चिंतन को एकत्व भावना कहते हैं ।

223. एषणा समिति :- निर्दोष आहार की प्राप्ति हेतु गोचरी संबंधी 42 दोषों को टालने का होता है । निर्दोष आहार, पानी की शोध को एषणा समिति कहते हैं ।

224. एकेन्द्रिय :- जिन जीवों के सिर्फ एक ही स्पर्शन इन्द्रिय होती है, वे एकेन्द्रिय कहलाते हैं जैसे - पृथ्वीकाय, अप् काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

225. एकल आहारी :- छ' री पालक यात्रा संघ में पालन करने योग्य एक नियम, इसमें एक ही बार भोजन अर्थात् एकासना होता है ।

226. एकासना :- सिर्फ दिन में एक ही आसन पर बैठकर एक ही बार भोजन करना, उसे एकासना कहते हैं ।

227. एकांतवाद :- कदाग्रह के वशीभूत होकर किसी भी एक नय की बात को स्वीकार कर, अन्य की बात का तिरस्कार करना, उसे एकांतवाद कहते हैं ।

228. एकावतारी :- सिर्फ एक ही जन्म को धारणकर जो मोक्ष में जानेवाले हों, वे एकावतारी कहलाते हैं ।

229. ओघसंज्ञा :- मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से समझ बिना होनेवाली प्रवृत्ति को ओघसंज्ञा कहते हैं । जैसे लता (बेल) दीवार पर चढ़ती है ।

For Private and Personal Use Only

230. ओघदृष्टि :- सामान्य मानवी की दृष्टि को ओघदृष्टि कहते हैं जिसमें लंबा विचार नहीं होता है ।

231. ओघा :- रजोहरण । साधु का यह मुख्य चिह्न है ।

232. औत्पातिकी बुद्धि :- घटना बनते ही तत्काल जवाब सूझ जाय, उसे औत्पातिकी बुद्धि कहते हैं । पहले कुछ भी देखा - सुना न हो फिर भी तुरंत जवाब सूझ जाता है ।

233. औदयिक भाव :- कर्म के उदय से होनेवाले आत्मपरिणाम को औदयिक भाव कहते हैं । इसके 21 भेद हैं-चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धभाव और छह लेशाएँ ।

234. औदारिक शरीर :- औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बने शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं ।

235. औदारिक वर्गणा :- पुद्गलों की वह वर्गणा जो भविष्य में औदारिक शरीर के रूप में परिणत होती है ।

236. औपशमिक चारित्र :- समस्त मोहनीय कर्म के उपशम से औपशमिक चारित्र होता है । मोहनीय कर्म की अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन क्रोध मान, माया, लोभ ये 16 कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद ये नौ नोकषाय, ये चारित्र मोह के विकल्प हैं । मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यकत्व प्रवृत्ति के भेद से दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं । मोहनीय कर्म के इन 28 विकल्पों के उपशमन से आत्मपरिणामों की जो निर्मलता होती है, उसे औपशमिक चारित्र कहते हैं ।

237. औपपातिक सूत्र :- पहले उपांग का नाम है ।

For Private and Personal Use Only

5

'क'

238. कथानुयोग :- आगम शास्त्र चार अनुयोगों में विभक्त है । 1 द्रव्यानुयोग 2 गणितानुयोग 3 कथानुयोग 4 चरण करणानुयोग । कथानुयोग में महापुरूषों के जीवन चरित्र आते हैं ।

239. कर्म :- मिथ्यात्व आदि हेतुओं के द्वारा आत्मा कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें आत्मसात् करती है । आत्मा पर लगने पर वे ही कार्मणवर्गणाएँ कर्म कहलाती हैं । कर्म के मुख्य 8 भेद हैं- 1. ज्ञानावरणीय 2. दर्शनावरणीय 3. वेदनीय 4. मोहनीय 5. आयुष्य 6. नाम 7. गोत्र 8. अंतराय ।

240. कल्याणक :- तीर्थंकर नाम कर्म के प्रभाव से तीर्थंकर परमात्मा के जीवन में होनेवाली पांच विशिष्ट घटनाएँ जो कल्याणक कहलाती है ।

1) च्यवन कल्याणक :- देवलोक में से आयुष्य का पूर्ण होना और माँ की कुक्षि में अवतरण होना ।

2) जन्म कल्याणक :- माँ की कुक्षि से परमात्मा का जन्म होना ।

3) दीक्षा कल्याणक :- सर्वसंग का त्याग कर परमात्मा द्वारा भागवती दीक्षा अंगीकार करना ।

4) केवलज्ञान कल्याणक :- घातिकर्मों के क्षय के साथ प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति होना ।

5) निर्वाण कल्याणक :- घाति - अघाति सर्व कर्मों का क्षय होने से परमात्मा के मोक्ष प्रयाण को निर्वाण कल्याणक कहते हैं ।

241. कल्प :- साधु के आचार को कल्प कहते हैं और कल्प को बतानेवाले सूत्र को **'कल्पसूत्र'** कहते हैं ।

242. कल्पवृक्ष :- जिसके पास याचना करने से मन की सारी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं, वे कल्पवृक्ष कहलाते हैं । 30 अकर्मभूमि और 56 अन्तर्द्वीप रूपी युगलिक काल में 10 प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं, जो मानवों की सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं ।

243. कल्पधर :- पर्युषण के दिनों में जिस दिन से कल्पसूत्र का वाचन प्रारंभ होता है उसके एक दिन पहले के दिन को कल्पधर कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

244. कल्पोपपन्न :- जहाँ स्वामी-सेवक आदि व्यवहार होता है । उसे कल्पोपपन्न कहते है । 12 वैमानिक तक के देवता कल्पोपपन्न कहलाते हैं ।

245. कल्पातीत :- जहाँ स्वामी - सेवक और छोटे - बड़े का भेद नहीं होता हो, वे देवता कल्पातीत कहलाते हैं । नौ ग्रेवेयक और पाँच अनुत्तर आदि देवता कल्पातीत कहलाते हैं ।

246. कवलाहार :- मनुष्य - पशु आदि जो आहार मुख से लेते हैं, उसे कवलाहार कहते हैं । उपवास आदि तपों में कवलाहार का त्याग होता है ।

247. कषाय :- कष अर्थात् संसार और आय अर्थात् वृद्धि । जिससे संसार की वृद्धि हो , ऐसी प्रवृत्ति को कषाय कहते हैं । कषाय के मुख्य चार भेद हैं- क्रोध, मान, माया और लोभ ।

248. कंदमूल :- अनंतकाय वनस्पति को कंदमूल कहा जाता है । जैसे- आलू, गाजर, मूली आदि ।

249. काम :- स्पर्शनेन्द्रिय की वासना जन्य प्रवृत्ति को काम कहते हैं ।

250. काय :- शरीर । काय का अर्थ समूह भी होता है । समग्र लोक में पाँच अस्तिकाय है - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ।

251. काय गुप्ति :- तीन प्रकार की गुप्ति में तीसरी गुप्ति कायगुप्ति है । कायगुप्ति अर्थात् शरीर और इन्द्रियों को संयम में रखना ।

252. कायस्थिति :- एक ही काया में बार बार उत्पन्न होना, उसे कायस्थिति कहते हैं । जैसे - पृथ्वीकाय की कायस्थिति असंख्य उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी है ।

253. करण सित्तरी :- साधु - साध्वी के लिए उपयोगी क्रियाएँ ! इसके 70 भेद हैं ।

254. कर्मभूमि :- जहां असि, मसि और कृषि का व्यापार होता हो उसे कर्म भूमि कहते हैं । कर्मभूमियाँ 15 हैं- 5 भरत क्षेत्र, 5 ऐरवत क्षेत्र और 5 महाविदेह क्षेत्र ।

255. कर्मफल :- कर्म के उदय से प्राप्त होनेवाले फल को कर्मफल कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

256. कर्मादान :- ऐसे व्यापार जिनसे आत्मा भयंकर कर्म का बंध करती है ।

257. कलिकाल :- अजैनो में 4 युग प्रसिद्ध हैं- सत् युग, त्रेतायुग द्वापर युग और कलियुग ।

258. कायक्लेश :- स्वेच्छा से विहार, केशलोच आदि द्वारा काया को कष्ट देना, उसे कायक्लेश तप कहते हैं ।

259. काय प्रविचार :- काया से विषय का सेवन करना ।

260. करण पर्याप्ता :- पर्याप्त नाम कर्म के उदय से जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करता है, उसे करण पर्याप्ता कहते हैं ।

261. कायोत्सर्ग :- कुछ समय के लिए मौन रहकर काया की ममता के त्याग की साधना को कायोत्सर्ग कहते हैं । कायोत्सर्ग जिनमुद्रा में किया जाता है ।

262. कालचक्र :- एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी के टोटल Total period को एक कालचक्र कहते हैं । 20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक कालचक्र होता है ।

263. कृष्ण लेश्या :- छह लेश्याओं में सबसे पहली अत्यंत क्रूर परिणाम वाली लेश्या को कृष्ण लेश्या कहते हैं ।

264. कुंभ स्थापना :- शांतिस्नात्र आदि अनुष्ठानों में विधिपूर्वक मंत्रोच्चारपूर्वक कुंभ की स्थापना की जाती है ।

265. केवलज्ञान :- तीन लोक और अलोक में रहे सभी पदार्थों के भूत-भावी और वर्तमान की समस्त पर्यायों का ज्ञान जिससे होता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं । ज्ञानावरणीय कर्म के संपूर्ण क्षय से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है ।

266. किल्बिषिक :- हल्की जाति के देवता । रत्नत्रयी की आशातना आदि करनेवाले किल्बिषिक जाति के देव के रूप में पैदा होते हैं ।

267. कृष्ण पाक्षिक :- जिस आत्मा का संसार परिभ्रमण अर्द्ध पुद्गल परावर्त काल से भी अधिक बाकी हो, उन जीवों को कृष्ण पाक्षिक कहते हैं ।

268. कृतज्ञता :- अपने उपकारी के उपकार को सदैव याद रखना उसे कृतज्ञता कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

269. केवल ज्ञानावरणीय कर्म :- केवलज्ञान पर आवरण लानेवाले कर्म को केवलज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

270. कालोदधि समुद्र :- धातकी खंड के चारों ओर आया हुआ एक समुद्र, जो आठ लाख योजन के विस्तारवाला है ।

271. कुण्डल द्वीप :- जंबूद्विप से चलने पर 11 वाँ कुंडलद्वीप आया हुआ है । जहाँ अनेक शाश्वत जिनमंदिर हैं ।

272. कुलांगार :- अपने कुल की कीर्ति को जलाने में अंगारे के समान जो पुत्र हो, उसे कुलांगार कहते हैं ।

273. क्षपकश्रेणी :- जिस श्रेणी में आत्मा मोहनीय आदि चार घातिकर्मों का जड़मूल से क्षय करती है, उसे क्षपक श्रेणी कहते हैं ।

274. क्षयोपशम सम्यक्त्व :- उदय में आए मिथ्यात्व मोहनीय के कर्म-दलिकों का क्षय और उदय में नहीं आए हुए - सत्ता में रहे हुए मिथ्यात्व के कर्म-दलिकों का उपशम जिसमें हो, उसे क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

275. क्षमा :- विपरीत संयोग खड़े होने पर भी क्रोध नहीं करना । उदय में आए क्रोध को निष्फल बनाना, उसे क्षमा कहते हैं ।

276. क्षायिक भाव :- कर्म के संपूर्ण क्षय से आत्मा में उत्पन्न होनेवाले भाव को क्षायिक भाव कहते हैं । इसके 9 भेद हैं-क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिकवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ।

277. क्षीरवर :- मध्यलोक का पंचम द्वीप व सागर ।

278. क्षमा श्रमण :- साधु का पर्यायवाची शब्द । क्षमा धर्म को जीवन में आत्मसात् करने के लिए प्रयत्नशील । वल्लभीपुर में हुई आगमवाचना के प्रणेता देवर्द्धिगणि का यह विशेषण भी है ।

279. क्षीणमोह :- 12 वें गुणस्थानक का नाम है क्षीणमोह । क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ आत्मा 12 वें गुणस्थानक में मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय कर देती है, अतः उस गुणस्थानक का नाम 'क्षीणमोह' है ।

280. क्षमापना पर्व :- संवत्सरी महापर्व के दिन क्षमा का आदान - प्रदान किया जाता है, अतः उसे क्षमापना पर्व भी कहते हैं ।

281. क्षय तिथि :- सूर्योदय के समय में जो तिथि न हो उसे क्षय तिथि कहते है ।

For Private and Personal Use Only

6 'ख'

282. खादिम :- चार प्रकार के आहार में से एक प्रकार का आहार । सूखा मेवा आदि खादिम कहलाते हैं ।

283. खातमुहूर्त :- जिनमंदिर के निर्माण के प्रारंभ में भूमि को खोदने की जो विधि की जाती है, भूमिखनन की उस क्रिया को खातमुहूर्त या खननमुहूर्त कहते हैं ।

284. खगोल :- आकाश-मंडल ।

7 'ग'

285. गुरु :- अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करनेवाले और मोक्षमार्ग की राह बतानेवाले गुरु कहलाते हैं ।

286. गुणानुवाद :- अन्य व्यक्ति में रहे हुए गुणों का आदरपूर्वक कथन करना, उसे गुणानुवाद कहते हैं ।

287. गीतार्थ :- शास्त्र के परमार्थ को जाननेवाले ।

288. गुरुकुलवास :- उपकारी गुरु के परिवार के साथ रहना, उसे गुरुकुलवास कहते हैं ।

289. गणधर :- तीर्थंकर परमात्मा के वरद हस्तों से सर्वप्रथम दीक्षित बने शिष्य । जिनकी दीक्षा के बाद ही तीर्थंकर परमात्मा तीर्थ की स्थापना करते हैं । ये गणधर बीजबुद्धि के निधान होते हैं जो अन्तर्मुहूर्त में द्वादशांगी की रचना कर देते हैं ।

290. गणधरवाद :- भगवान महावीर के ग्यारह गणधर । दीक्षा लेने के पूर्व इन्द्रभूति आदि के मन में आत्मा के अस्तित्व आदि विषयक जो शंकाएँ थीं, उनका समाधान भगवान महावीर ने किया था । गणधरों की शंकाओं का निवारण संबंधी जो ग्रंथ, उसी को गणधरवाद कहते हैं ।

291. गणिपिटक :- गणधरों से रचित द्वादशांगी को गणिपिटक कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

292. गर्भज :- गर्भकाल पूरा होनेपर गर्भ से जन्म लेनेवाले जीव गर्भज कहलाते हैं । इनके तीन भेद हैं-

1. **जरायुज :** जरायु एक प्रकार का जाल जैसा पदार्थ होता है, जो रक्त आदि से भरा होता है । मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी आदि जीवों का जन्म जरायुज होता है ।

2. अंडज :- अंडे के रूप में पैदा होनेवाले जीव अंडज कहलाते हैं- कुछ समय तक अंडे को सेने के बाद उसमें से बच्चा बाहर आता है । उदा. मुर्गा, कबूतर, चिड़िया आदि ।

3. पोतज :- किसी भी प्रकार के आवरण में लिपटे बिना पैदा होते हैं, वे पोतज कहलाते हैं जैसे - हाथी, खरगोश, चूहा आदि ।

293. गारव :- गारव अर्थात् आसक्ति । इसके तीन भेद हैं–

1) रस गारव :- आहार में आसक्ति ! अनुकूल आहार की प्राप्ति का अभिमान ।

2) ऋद्धि गारव :- प्राप्त संपत्ति में आसक्ति ! पुण्योदय से प्राप्त लब्धि आदि का अभिमान करना ।

3) शाता गारव :- शारीरिक मानसिक सुख में आसक्ति ! शारीरिक सुख का अभिमान ।

294. गुणव्रत :- श्रावक के 12 व्रतों में 5 अणुव्रतों के बाद तीन गुणव्रत आते हैं । 5 अणुव्रतों के लिए गुणकारक होने से गुणव्रत कहलाते हैं । गुणव्रत तीन हैं-

1) दिक् परिमाण व्रत - चारों दिशाओं में जाने - आने का परिमाण निश्चित करना ।

2) भोगोपभोग विरमण व्रत :- जिस वस्तु का एक ही बार भोग हो सकता है उसे भोग कहते हैं जैसे - भोजन आदि । जिस वस्तु को बार बार भोगा जा सकता हो, उसे उपभोग कहते हैं । जैसे - स्त्री, आभूषण, वस्त्र, मकान, गाड़ी आदि । भोग और उपभोग के पदार्थों का परिमाण निश्चित करना उसे भोगोपभोग विरमणव्रत कहते हैं । इस व्रत में अभक्ष्य भक्षण का त्याग किया जाता है ।

For Private and Personal Use Only

3) अनर्थदंड विरमण व्रत :- जीवन निर्वाह के लिए जो पाप किये जाते हैं वे अर्थदंड कहलाते हैं और सिर्फ मौजमजा के लिए जो पाप होते हैं वे अनर्थदंड के पाप कहलाते हैं ।

जैसे-भोजन , स्नान आदि करना अर्थ दंड का पाप है तो नाटक, सिनेमा, टी.वी. आदि का पाप अनर्थदंड का पाप कहलाता है ।

295. गोचरी :- गो अर्थात् गाय ! चरी = चरना ! जिस प्रकार गाय जंगल में चरती है तब ऊपर-ऊपर से थोड़ा-थोड़ा घास खाती है और फिर आगे बढ़ती है, परंतु गधा जब चरता है तब घास को उखाड़कर ही खा जाता है ।

जैन साधु की भिक्षा को गोचरी कहते हैं । वे भी अनेक घरों से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा ग्रहण करते हैं । इसलिए उस भिक्षावृत्ति को भी गोचरी कहते हैं ।

296. गुणस्थानक :- आत्मा के विकास की कुल चौदह भूमिकाएँ steps हैं, इन्हें गुणस्थानक कहते हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं-

1) मिथ्यात्व गुणस्थानक 2) सास्वादन गुणस्थानक

3) मिश्र गुणस्थानक 4) अविरत गुणस्थानक

5) देशविरति गुणस्थानक 6) प्रमत्त गुणस्थानक

7) अप्रमत्त गुणस्थानक 8) अपूर्वकरण गुणस्थानक

9) अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक 10) सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक

11) उपशांत मोह गुणस्थानक 12) क्षीण मोह गुणस्थानक

13) सयोगी गुणस्थानक 14) अयोगी गुणस्थानक ।

297. गर्भगृह :- जैन मंदिर का वह मुख्य स्थान, जहाँ मूलनायक भगवान की प्रतिष्ठा की जाती है । उसे गभारा भी कहते हैं ।

298. ग्रंथि :- राग - द्वेष की गाँठ । गाढ़ मिथ्यात्व के उदय के कारण आत्मा में रही हुई राग - द्वेष की अभेद्य ग्रंथि जिसका भेद करना बहुत ही कठिन है । सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय इस ग्रंथि का भेद अवश्य करना पड़ता है ।

For Private and Personal Use Only

299. गोत्रकर्म :- आत्मा पर लगे आठ कर्मों में सातवाँ गोत्र कर्म है । इसके दो भेद हैं-उच्च गोत्र और नीच गोत्र ! उच्च गोत्र कर्म के उदय से जीव ऊँचे कुल में पैदा होता है और नीच गोत्र कर्म के उदय से जीव हल्के कुल में पैदा होता है ।

300. ग्रैवेयक :- 12 वैमानिक देवलोक के ऊपर नौ ग्रैवेयक देवलोक आए हुए हैं । ये सभी देव कल्पातीत कहलाते हैं । अभव्य की आत्मा उत्कृष्ट द्रव्य चारित्र के बल से अधिकतम नौवें ग्रैवयक तक उत्पन्न हो सकती है ।

301. गुप्ति :- मन, वचन और काया की असत् प्रवृत्ति का त्याग और सत्प्रवृत्ति के आचरण को गुप्ति कहते हैं । गुप्तियाँ तीन हैं- 1) मन गुप्ति 2) वचन गुप्ति और 3) कायगुप्ति ।

302. गरल अनुष्ठान :- पर भव में सांसारिक सुख की प्राप्ति के संकल्प पूर्वक जो धार्मिक अनुष्ठान किया जाता है, उसे गरल अनुष्ठान कहते हैं ।

303. गुरु पारतंत्र्य :- गुरु की आज्ञा के अधीन रहना, उसे गुरु पारतंत्र्य कहा जाता है ।

304. गजदंत पर्वत :- मेरुपर्वत की चारों दिशाओं में हाथीदाँत के आकारवाले सोमनस आदि चार पर्वत आये हुए हैं ।

305. गृहस्थलिंग सिद्ध :- गृहस्थ के वेष में ही जो जीव वैराग्य से क्षपकश्रेणी पर चढ़कर घातिकर्मों का क्षयकर केवली बने हों, वे गृहस्थलिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

306. घड़ी :- 24 मिनिट को एक घड़ी कहते हैं । दो घड़ी को एक मुहूर्त कहते हैं ।

307. घनवात :- अत्यंत गाढ़ वायु ! जमे हुए बर्फ अथवा घी की तरह अत्यंत ही ठोस वायु । पहली नरक पृथ्वी के नीचे घनोदधि है, उसके नीचे घनवात और उसके नीचे तनुवात है और उसके नीचे आकाश है ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'च'

308. चतुर्ज्ञानी :- पाँच ज्ञान में से मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यवज्ञान के धारक महात्मा को चतुर्ज्ञानी कहते हैं ।

309. चतुरिन्द्रिय :- पाँच इन्द्रियों में से कर्णेन्द्रिय को छोड़कर चार इन्द्रियों को धारण करनेवाले जीव चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं । जैसे - मच्छर, मक्खी, बिच्छू आदि ।

310. चोविहार :- अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार के त्याग को चोविहार कहते हैं ।

311. चतुष्पद :- चार पाँववाले तिर्यंच प्राणियों को चतुष्पद कहते हैं । जैसे- गाय, भैंस, बैल, ऊँट, हाथी, कुत्ता, बिल्ली आदि ।

312. चक्रवर्ती :- जो छह खंड के अधिपति होते हैं । जो चक्ररत्न आदि 14 रत्न, 9 निधि आदि के स्वामी होते है । चक्रवर्ती के 64000 स्त्रियाँ होती हैं । 32000 मुकुटबद्ध राजाओं का अधिपति होता है ।

विशाल साम्राज्य और पुण्य का स्वामी होता है । चक्रवर्ती अपने वैभव को छोड़कर दीक्षा ले तो मोक्ष में जाता है अथवा स्वर्ग में जाता है ।

एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी काल में 12-12 चक्रवर्ती होते हैं । इस अवसर्पिणी काल के 8 चक्रवर्ती मोक्ष में, दो स्वर्ग में तथा दो सातवीं नरक में गए थे । शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ तीर्थंकर के साथ चक्रवर्ती भी बने थे ।

313. चउविसत्थो :- जिसमें 24 भगवान की स्तवना होती है उसे चउविसत्थो कहते हैं ।

314. चक्ररत्न :- चक्रवर्ती के 14 रत्नों में से एक रत्न जिसके बल पर चक्रवर्ती छह खंड का विजेता बनता है ।

315. चातुर्मास :- आषाढ़ सुदी 14 से कार्तिक सुदी 14 की चार मास की अवधि को चातुर्मास कहते हैं । यद्यपि 12 मास में कुल तीन चातुर्मास होते हैं फिर भी वर्षा ऋतु के चार मास के लिए यह शब्द अधिक रूढ़ है ।

For Private and Personal Use Only

316. चतुर्थभक्त :- आगे पीछे एकासना और बीच में उपवास का तप हो तो उस उपवास को चतुर्थभक्त कहते हैं ।

317. चतुर्विधसंघ :- साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप संघ को चतुर्विध संघ कहते हैं । साधु-साध्वीजी सर्वविरति के धारक होते हैं और श्रावक-श्राविका देशविरति के धारक होते हैं ।

318. चारित्रपर्याय :- दीक्षित मुनि के संयमजीवन के पर्याय को चारित्र पर्याय कहते हैं । संसार का त्याग कर जब कोई मुमुक्षु दीक्षा अंगीकार करता है तबसे उसके दीक्षा पर्याय - चारित्र पर्याय की गणना होती है ।

319. चलितरस :- समय बीतने पर खाद्य सामग्री के रूप, रस, गंध और स्पर्श में परिवर्तन आ जाता है । इसके फलस्वरूप उसमें जीवोत्पत्ति हो जाती है । चलितरसवाली खाद्य सामग्री अभक्ष्य कहलाती है ।

320. चरमावर्ती :- जिस आत्मा का संसार परिभ्रमण एक पुद्गल परावर्त काल से अधिक न हो, उसे चरमावर्ती कहते हैं । उस काल के बाद उस आत्मा का अवश्य ही मोक्ष होता है ।

321. चरम शरीरी :- मोक्ष में जाने के पूर्व आत्मा जिस शरीर में हो, वह चरम शरीर कहलाता है और उस शरीरधारी आत्मा को चरमशरीरी कहते हैं ।

322. चर्या परिषह :- साधु जीवन में विहार आदि में पत्थर-कंकड़ आदि के जो कष्ट सहन करने के होते हैं, उसे चर्या परिषह कहते हैं । संयम जीवन में कर्मों की निर्जरा के लिए सहनकरने योग्य कुल 22 परिषह हैं ।

323. चामर :- तारक तीर्थंकर परमात्मा के आठ प्रातिहार्यों में एक चामर प्रातिहार्य है । प्रभु जब समवसरण में बिराजमान होते हैं, तब देवतागण उनके दोनों ओर चामर वींजते हैं ।

324. चूलिका :- नवकार महामंत्र में **'एसो पंच नमुक्कारो'** आदि चार पदों को चूलिका कहते हैं ।

325. चारित्र मोहनीय :- चारित्र की प्राप्ति व पालन में अंतराय करनेवाले कर्म को चारित्रमोहनीय कर्म कहते हैं ।

326. चतुरंगी सेना :- जिस सेना में चार अंग होते हैं उसे चतुरंगी सेना कहते हैं । जैसे - हस्तिदल, अश्वदल, रथदल और पैदल ।

For Private and Personal Use Only

327. चत्तारि मंगलं :- इस जगत् में चार वस्तुएँ मंगल स्वरूप हैं । अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म !

328. चैत्य :- जिनमंदिर या जिनप्रतिमा ।

329. चिरंतन :- प्राचीन ।

330. चंद्रप्रज्ञप्रि :- बारह उपांगों में से एक उपांग सूत्र, जिसमें चंद्र आदि के विषय में विस्तृत जानकारी है ।

331. च्यवन कल्याणक :- तारक तीर्थंकर परमात्मा के पाँच कल्याणक होते हैं, उनमें पहला कल्याणक, च्यवन कल्याणक है । अपने अंतिम भव के पूर्व देवलोक में से अपने आयुष्य को पूर्ण कर जब माँ की कुक्षि में आते हैं, उसे च्यवन कल्याणक कहते हैं, उस समय माता चौदह महास्वप्न देखती है ।

332. चातुर्मासिक प्रतिक्रमण :- चार मास में एक बार जो प्रतिक्रमण किया जाता है, वह चातुर्मासिक प्रतिक्रमण कहलाता है । कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मास में शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन यह प्रतिक्रमण होता है ।

333. चारित्राचार :- पांच आचारों में से एक आचार । चारित्राचार के आठ भेद है-पांच समिति और तीन गुप्ति ।

334. चैत्य परिपाटी :- पर्युषण के पांच कर्तव्यों में पांचवा कर्तव्य ! गांव में जितने मंदिर है । उनके दर्शनार्थ संघ सहित समूह में जाना ।

10 'छ'

335. छद्मस्थ अवस्था :- दीक्षा अंगीकार करने के बाद जब तक अरिहंत परमात्मा को केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, तब तक परमात्मा की छद्मस्थ अवस्था कहलाती है ।

336. छेदोपस्थापनीय :- पाँच प्रकार के चारित्र में दूसरे क्रम का चारित्र ! भागवती दीक्षा अंगीकार करते समय सामायिक चारित्र होता है । उसके बाद जब बड़ी दीक्षा होती है, तब पूर्व पर्याय का छेद होने के कारण उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं ।

337. छंदणा :- गोचरी वहोरकर लाने के बाद गुरु आदि को आमंत्रण देना, उसे छंदणा कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

338. छेद प्रायश्चित्त :- चारित्र में कोई बड़ा दोष लगा हो तो पूर्व के चारित्र पर्याय में से कुछ वर्ष के चारित्र पर्याय का छेद करना उसे छेद प्रायश्चित्त कहते हैं ।

339. जघन्य :- कम से कम ।

340. जंबूद्वीप :- मध्यलोक के मध्य में रहा द्वीप जंबूद्वीप है । जंबूद्वीप एक लाख योजन लंबा - चौड़ा है । यह द्वीप थाली के आकार है । अन्य सभी द्वीप और समुद्र चूड़ी के आकार के हैं और दुगुने - दुगुने व्यासवाले हैं ।

341. जरावस्था :- वृद्धावस्था

342. जलचर :- पानी में रहनेवाले तिर्यंच प्राणियों को जलचर कहते हैं ।

343. जातिभव्य :- जिन जीवों में मोक्ष में जाने की योग्यता तो है, परंतु अव्यवहार राशि की निगोद में से कभी भी बाहर नहीं निकलने के कारण जिनको मोक्षमार्ग के लिए अनुकूल सामग्री की प्राप्ति नहीं होती हैं, वे जीव जाति भव्य कहलाते हैं ।

344. जातिस्मरण ज्ञान :- पूर्व भव के ज्ञान को जातिस्मरण ज्ञान कहते हैं, यह भी मतिज्ञान का ही एक प्रकार है ।

345. जिज्ञासा :- ज्ञात-अज्ञात पदार्थों के बोध की इच्छा को जिज्ञासा कहते हैं ।

346. जितेन्द्रिय :- जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की हो, उसे जितेन्द्रिय कहते हैं ।

347. जीव :- जिसमें चेतना हो, उसे जीव कहते हैं । जीव में उपयोग ज्ञानोपयोग - दर्शनोपयोग होता है ।

348. जीवाभिगम :- 12 उपांगों में तीसरे क्रम के उपांग का नाम जीवाभिगम है ।

349. जीवास्तिकाय :- आत्म प्रदेशों के समूह को जीवास्तिकाय कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

350. जीवविचार :- चार प्रकरणों में सबसे पहला प्रकरण ! इस प्रकरण में जीव के स्वरूप का विचार किया गया है ।

351. जैन :- राग-द्वेष रूपी आत्मशत्रुओं को जीतनेवाले जिन कहलाते हैं और उनके द्वारा बताए हुए मार्ग का अनुसरण करनेवाला जैन कहलाता है ।

352. जैनधर्म :- वीतराग परमात्मा के द्वारा बताए हुए धर्म को जैन धर्म कहते हैं ।

353. जंगम तीर्थ :- चलते - फिरते साधु - साध्वी को जंगमतीर्थ कहते हैं ।

354. जंघाचारण मुनि :- जिस विद्या विशेष से जंघा के द्वारा आकाश में उड़ने का बल प्राप्त होता है, ऐसी लब्धिवाले मुनि को जंघाचारण मुनि कहते हैं ।

355. जलकमलवत् निर्लेप :- जिसप्रकार कमल जल में पैदा होता है, परंतु जल से अलिप्त होता है, उसी प्रकार से संसार में पैदा होने पर भी जो संसार से सर्वथा अलिप्त रहते हैं वे साधक जलकमलवत् निर्लेप कहलाते हैं ।

356. जगद् गुरु :- संपूर्ण जगत् के गुरु-तीर्थंकर परमात्मा ।

357. जठराग्नि :- पेट में रही आग जिससे खाया हुआ भोजन पचता है ।

358. जन्मान्तर :- इस जन्म के बाद का अन्य जन्म ।

359. जीर्णोद्धार :- जीर्ण हो चूके मंदिर का पुनः उद्धार करना-निर्माण करना ।

360. जुगुप्सा :- किसी के मलिन वस्त्र आदि को देखकर घृणा करना ।

361. ज्ञाताधर्मकथा :- बारह अंगों में छठे अंग का नाम ज्ञाता धर्म कथा है । जिसमें करोड़ों कथाएँ थीं ।

362. ज्ञातृपुत्र :- भगवान महावीर ! ज्ञातृ कुल में उत्पन्न होने के कारण भगवान महावीर का एक नाम ज्ञातपुत्र भी है ।

363. ज्ञानाचार :- पाँच प्रकार के आचारों में सबसे पहला आचार ज्ञानाचार है । इसके आठ भेद हैं-

For Private and Personal Use Only

1) उचित काल :- निषिद्ध काल को छोड़ उचित समय में शास्त्र का स्वाध्याय करना ।

2) विनय :- गुरुवंदन आदि विधिपूर्वक सूत्रों का स्वाध्याय करना ।

3) बहुमान :- ज्ञानदाता गुरु के प्रति हृदय में आदर भाव रखना ।

4) उपधान :- नवकार आदि सूत्रों के अधिकारी बनने के लिए शास्त्र में निर्दिष्ट विधि के अनुसार तप - जप आदि करना ।

5) अनिह्नव :- जिस गुरु के पास ज्ञान प्राप्त किया हो, उसके नाम आदि को नहीं छिपाना ।

6) व्यंजन :- सूत्रों का शुद्ध उच्चारण करना ।

7) अर्थ :- जिस सूत्र का जो अर्थ होता हो, वो ही अर्थ करना ।

8) तदुभय :- सूत्र का उच्चारण करते समय उसके अर्थ में उपयोग रखना ।

364. ज्ञानातिशय :- तीर्थंकर परमात्मा के चार अतिशयों में से एक अतिशय ! इसके प्रभाव से प्रभु लोक अलोक के संपूर्ण स्वरूप को प्रत्यक्ष जानते - देखते हैं ।

365. ज्ञानावरणीय :- ज्ञान पर आवरण लानेवाले कर्म को ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं । इस कर्म के उदय के कारण आत्मा में अज्ञानता, मतिमंदता, विस्मृति आदि भाव पैदा होते हैं ।

366. ज्ञेय :- जाननेयोग्य पदार्थों को ज्ञेय कहा जाता है ।

367. ज्ञान पंचमी :- सम्यग् ज्ञान की आराधना का वार्षिक पर्व, जो कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन मनाया जाता है । उस दिन सम्यग्ज्ञान की आराधना हेतु उपवास के साथ 51 लोगस्स का कायोत्सर्ग, 51 खमासमणे, 51 स्वस्तिक आदि किए जाते हैं । ज्ञानपंचमी की आराधना करने से अपने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है ।

368. ज्ञानप्रवाह :- चौदह पूर्व में से 5 वें पूर्व का नाम ज्ञानप्रवाह है ।

369. ज्ञानेन्द्रिय :- जिन इन्द्रियों से ज्ञान होता हैं, उन्हे ज्ञानेन्द्रिय कहते है । ये पांच हैं-कान, आँख, नाक, जीभ और त्वक् (चमडी) ।

370. ज्ञेयतत्त्व :- ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य । जीव आदि नौ तत्वों में जीव और अजीव ज्ञेय तत्व है ।

For Private and Personal Use Only

12 'ट'

371. टीका :- मूल ग्रंथ पर संस्कृत भाषा में जो विवेचन किया जाता है, उसे टीका कहते हैं । टीका का एक अर्थ निंदा भी होता है ।

372. टीकाकार :- टीका की रचना करनेवाले को टीकाकार कहते हैं ।

13 'त'

373. तत्त्व :- किसी भी पदार्थ के सार भाग को तत्त्व कहा जाता है । जैन दर्शन जीव आदि 9 पदार्थों को तत्त्व कहता है । 1) जीव 2) अजीव 3) पुण्य 4) पाप 5) आस्त्रव 6) संवर 7) निर्जरा 8) बंध 9) मोक्ष ।

374. तत्त्वरुचि :- वीतराग प्ररूपित तत्त्वों को जानने की इच्छा को तत्त्वरुचि कहते हैं ।

375. तत्त्व संवेदन :- वस्तु के यथार्थ स्वरूप की सम्यग् अनुभूति को तत्त्व संवेदन कहते हैं । ज्ञानावरणीय और मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होनेवाला यह तात्त्विक ज्ञान है ।

376. तत्त्वार्थ सूत्र :- वाचकवर्य श्री उमास्वाति जी के द्वारा विरचित एक अद्‌भुत ग्रंथ, जिसमें जैन दर्शन के सभी पदार्थों का समावेश हो जाता है ।

377. तद्भव मोक्षगामी :- उसी भव में मोक्ष में जानेवाला ।

378. तनुवात :- अत्यंत ही पतला वायु !

379. तपाचार :- साधु और श्रावकों को पालन करने योग्य पाँच आचारों में से चौथा आचार ! इसके 12 भेद हैं । 1) अनशन 2) ऊणोदरी 3) वृत्तिसंक्षेप 4) रसत्याग 5) कायक्लेश 6) संलीनता 7) प्रायश्चित्त 8) विनय 9) वैयावच्च 10) स्वाध्याय 11) कायोत्सर्ग और 12) ध्यान ।

380. तीर्थ :- जिसके आलंबन से भवसागर को पार किया जा सकता है, उसे तीर्थ कहते हैं । ये दो प्रकार के हैं 1) स्थावर तीर्थ और 2) जंगम तीर्थ !

For Private and Personal Use Only

शत्रुंजय, शंखेश्वर आदि स्थावर तीर्थ कहलाते हैं । साधु साध्वी आदि जंगम तीर्थ कहलाते हैं ।

381. तिर्च्छा लोक :- 14 राजलोक रूप इस विश्व के मध्य में तिर्च्छालोक आया हुआ है । इसका विस्तार एक राजलोक प्रमाण है और इसकी ऊँचाई 1800 योजन प्रमाण है ।

382. तिविहार :- अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चार प्रकार के आहार में से तीन प्रकार के आहार के त्याग को तिविहार कहते हैं । इसमें पानी को छोड़कर अन्य तीन आहार का त्याग किया जाता है ।

383. तीर्थंकर :- भव सागर से पार उतरने के लिए जो तीर्थ की स्थापना करते हैं, उन्हें तीर्थंकर कहते हैं । साधु - साध्वी श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ को तीर्थ कहते हैं ।

384. तीर्थसिद्ध :- तीर्थ की स्थापना हो जाने के बाद जो आत्माएँ मोक्ष में जाती हैं, उन्हें तीर्थसिद्ध कहा जाता है ।

385. तेजोलेश्या :- 1) विशिष्ट प्रकार की तपसाधना के द्वारा आत्मा में उत्पन्न होनेवाली लब्धि विशेष को तेजोलेश्या कहते हैं । यह तेजोलेश्या जिस पर छोड़ी जाय उसे जलाकर भस्मीभूत कर देती है ।

गोशाला ने भगवान महावीर पर तेजोलेश्या छोड़ी थी । उस तेजोलेश्या के प्रभाव से सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनि जलकर भस्मीभूत हो गए थे ।

2) छह प्रकार की लेश्याओं में चौथी लेश्या तेजोलेश्या है । यह शुभ लेश्या है ।

386. तत्त्वत्रयी :- सुदेव, सुगुरु और सुधर्म को तत्त्वत्रयी कहा जाता है ।

387. तमस्तमः प्रभा :- सातवी नरक पृथ्वी का गोत्र ।

388. त्रिक :- तीन-तीन वस्तुओं के समूह को त्रिक कहते हैं । जिन मंदिर में दश त्रिक का पालन करना होता है ।

389. तेउकाय :- अग्निस्वरूप जीवों को तेउकाय कहते हैं ।

390. त्रिकालज्ञानी :- भूत, भविष्य और वर्तमान का जिन्हें पूर्णज्ञान हो उन्हें त्रिकालज्ञानी कहते हैं ।

391. त्रिकरणयोग :- मन, वचन और काया के योग को त्रिकरण योग कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

392. त्रस नाड़ी :- चौदह राजलोक के बीच में ऊपर से नीचे तक त्रसनाड़ी आई हुई है, जो 1 राजलोक विस्तृत और 14 राजलोक लंबी है। सभी त्रस जीव इसी त्रस नाड़ी में पैदा होते हैं।

393. तैजस शरीर :- शरीर 5 हैं - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण ! इनमें चौथा शरीर तैजस शरीर है। यह शरीर सभी जीवों में अवश्य होता है। यह शरीर बाह्य शरीर को कांति और उष्णता प्रदान करता है। खाये हुए भोजन को भी पचाने का काम यही शरीर करता है।

394. त्रिपदी :- तारक तीर्थंकर परमात्मा गणधर भगवंतों को **'उपन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा'**-यह त्रिपदी प्रदान करते हैं। इस त्रिपदी का श्रवण कर बीज बुद्धि के निधान गणधर भगवंत समग्र द्वादशांगी की रचना करते हैं।

395. त्रिषष्टि शलाका पुरुष :- तिरसठ उत्तम पुरुष। इस अवसर्पिणी काल में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव और 9 बलदेव-ये 63 उत्तम पुरुष पैदा हुए है।

396. तीर्थंकर नाम कर्म :- जगत् के जीव मात्र के कल्याण की कामना से आत्मा तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करती है। इस कर्म की निकाचना पूर्व के तीसरे भव में करती है। इस कर्म की निकाचना के बाद तीसरे भव में वह आत्मा तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाती है। विरल आत्माएँ ही तीर्थंकर पद प्राप्त करती हैं।

इस कर्म के उदय से आत्मा में अनेक प्रकार की विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। उन आत्माओं में 34 अतिशय पैदा होते हैं।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी काल में 24-24 तीर्थंकर पैदा होते हैं। 5 महाविदेह में जघन्य से 20 और उत्कृष्ट से 160 तीर्थंकर पैदा होते हैं। वहाँ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल जैसी व्यवस्था नहीं है।

397. तीन छत्र :- तीर्थंकर परमात्मा जब समवसरण में बिराजमान होते हैं, तब उनके ऊपर देवतागण त्रिभुवन के साम्राज्य के प्रतीक रूप तीन छत्र रखते हैं।

398. तीन गढ़ :- देवतागण जिस समवसरण की रचना करते हैं, उसके तीन गढ़ होते हैं। नीचे से पहला गढ़ चांदी का, दूसरा गढ़ सोने का और तीसरा गढ़ रत्नों का होता है। ये तीन गोलाकार अथवा अष्टकोणीय होते हैं।

For Private and Personal Use Only

14

'थ'

399. थीणद्धि निद्रा :- पाँच प्रकार की निद्राओं में 5 वें प्रकार की निद्रा को थीणद्धि निद्रा कहते हैं । इस निद्रा के उदयवाला जीव दिन में सोचा हुआ कार्य नींद में ही आकर कर लेता है, परंतु उसे कुछ भी पता नहीं चलता है । इस निद्रा के उदयवाले प्रथम संघयणवाले को वासुदेव से आधा बल प्राप्त हो जाता है ।

15

'द'

400. दर्शन :- दर्शन शब्द के अनेक अर्थ होते हैं ।

1) जिसके द्वारा जिनकथित वचनों पर श्रद्धा पैदा होती है, उसे दर्शन कहते हैं ।

2) वस्तु में रहे सामान्य बोध को दर्शन कहते हैं ।

3) अलग-अलग धर्म की मान्यता को भी दर्शन कहा जाता है, जैसे- जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, वेदांत दर्शन आदि ।

401. दर्शनावरणीय कर्म :- आठ प्रकार के कर्मों में दूसरे नंबर के कर्म का नाम दर्शनावरणीय कर्म है । वस्तु में रहे सामान्य धर्म के बोध में अंतराय करनेवाला यह कर्म है ।

402. दश पूर्वी :- दश पूर्वो के ज्ञान को धारण करनेवाले महात्मा को दशपूर्वी कहते हैं ।

403. दशवैकालिक :- 45 आगमों में चार मूलसूत्र कहलाते हैं । उनमें एक दशवैकालिक सूत्र है । विकाल समय में रचना होने से वैकालिक कहलाता है । और दश अध्ययन होने से इसे दशवैकालिक कहते हैं ।

404. दश दिशाएँ :- उत्तर, दक्षिण पूर्व और पश्चिम ये चार दिशाएँ कहलाती हैं । ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य ये चार विदिशाएँ कहलाती हैं तथा ऊर्ध्व और अधो ये सब मिलकर दश दिशाएँ हैं ।

405. दंड :- दंड शब्द के अनेक अर्थ हैं ।

For Private and Personal Use Only

1) लकड़ी को भी दंड कहते हैं ।

2) मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को भी मन दंड, वचन दंड और काया दंड कहते हैं ।

3) चक्रवर्ती के एक रत्न को भी दंड रत्न कहते हैं ।

4) किसी गुनाह के बदले जो सजा दी जाती है, उसे भी दंड कहते हैं ।

406. दंडक :- जिससे आत्मा दंडित हो, उसे दंडक कहते हैं । चार प्रकरण में एक दंडक सूत्र है, जिसमें 24 द्वार बतलाए हैं ।

407. दंशमशक परिषह जय :- मक्खी, मच्छर आदि के डंक को समतापूर्वक सहन करना, उसे दंशमशक परिषह जय कहते हैं ।

408. दानांतराय कर्म :- अंतराय कर्म के 5 भेदों में सबसे पहला भेद दानांतराय कर्म है । दान में होनेवाले अंतराय को दानांतराय कर्म कहते हैं । स्वयं के पास करोडों की संपत्ति होने पर भी इस कर्म के उदय के कारण व्यक्ति थोड़ा भी दान नहीं कर पाता है ।

409. दीक्षा :- मोह माया के बंधनों को तोड़ना, उसे दीक्षा कहते हैं ।

410. दीक्षा कल्याणक :- तारक तीर्थंकर परमात्मा संसार का त्यागकर जब भागवती-दीक्षा अंगीकार करते हैं, उसे दीक्षा कल्याणक कहते हैं ।

411. दुषम सुषमा :- अवसर्पिणी काल के चौथे आरे का नाम दुषम सुषमा है । इस आरे में तीसरे आरे की अपेक्षा दुः ख ज्यादा और सुख कम होता है ।

412. दुष्कृत गर्हा :- अपने जीवन में हुए पापों की निंदा करना उसे दुष्कृत गर्हा कहते हैं ।

413. दिव्यध्वनि :- केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद तारक तीर्थंकर परमात्मा के जो आठ प्रातिहार्य होते हैं, उनमें एक दिव्यध्वनि है । परमात्मा जब देशना देते हैं, तब देवता वाद्य यंत्र बजाकर स्वर में स्वर पूरते हैं ।

414. दुषम काल :- अवसर्पिणी काल के 5 वें आरे का नाम दुषम काल है, इस काल में दुःख की प्रधानता - प्रबलता होती है ।

415. दुषम दुषम काल :- अवसर्पिणी काल के छठे आरे का नाम दुषम दुषम काल है । इस काल में अत्यधिक प्रमाण में दुःख होता है ।

For Private and Personal Use Only

416. दृष्टिराग :- अपने मिथ्यामत के तीव्रराग को दृष्टिराग कहते हैं । दृष्टिराग में अंध बने व्यक्ति को दूसरे सत्य मत की बात अच्छी नहीं लगती है ।

417. देशविरति :- हिंसा आदि पापों के आंशिक त्याग की प्रतिज्ञा को देशविरति कहते हैं । श्रावक के 12 व्रत देशविरति रूप कहलाते हैं ।

418. दैवसिक प्रतिक्रमण :- दिवस संबंधी पापों की आलोचना रूप जो प्रतिक्रमण किया जाता है उसे दैवसिक प्रतिक्रमण कहते हैं । इस प्रतिक्रमण से दिवस संबंधी पापों का नाश होता है ।

419. द्रव्यलिंग :- बाह्य वेष को द्रव्यलिंग कहते हैं ।

420. द्रव्यार्थिक नय :- प्रत्येक द्रव्य में सामान्य और विशेष धर्म रहे हुए हैं । वस्तु में रहे सामान्य धर्म को आगे कर जो नय विचार करता है, वह द्रव्यार्थिक नय है ।

421. देवदूष्य :- तीर्थंकर परमात्मा जब दीक्षा अंगीकार करते हैं, तब इन्द्र महाराजा उनके बाएँ स्कंध में दिव्य वस्त्र रखते हैं, जिसे देवदूष्य कहते हैं ।

422. द्रव्य कर्म :- कर्म रूप में परिणत हुए कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को द्रव्य कर्म कहते हैं ।

423. द्वेष :- अप्रीति, वैरभाव, तिरस्कार भाव ।

424. द्वीप :- जिस भूमि के चारों ओर समुद्र हो, उसे द्वीप कहते हैं । जंबुद्वीप के चारों ओर लवणसमुद्र है ।

425. दर्शन मोहनीय कर्म :- जिस कर्म के उदय से आत्मा सम्यग् दर्शन प्राप्त नहीं कर पाती है अथवा प्राप्त सम्यग् दर्शन से भ्रष्ट बनती है । इस कर्म का उदय सम्यक्त्व की प्राप्ति में बाधक बनता है ।

426. दर्शनोपयोग :- वस्तु में रहे सामान्यधर्म को देखने में जो उपयोग होता है, वह दर्शनोपयोग कहलाता है ।

427. दिक् परिमाणव्रत :- श्रावक के 12 व्रतों में पाँच अणुव्रतों के बाद जो तीन गुणव्रत हैं, उसमें पहला गुणव्रत दिक् परिमाणव्रत है । इस व्रत द्वारा श्रावक चारों दिशाओं में जाने - आने का परिमाण निश्चित करता है ।

For Private and Personal Use Only

428. दृष्टिवाद :- गणधर रचित द्वादशांगी में बारहवें अंग का नाम दृष्टिवाद है, इसमें चौदह पूर्वों का समावेश हो जाता है ।

429. दृष्टिविष सर्प :- जिस सांप की नजर में ही जहर हो, उसे दृष्टिविष कहते हैं । चंडकोशिक दृष्टिविष सर्प था ।

430. देवद्रव्य :- प्रभु प्रतिमा के समक्ष धरा हुआ द्रव्य तथा प्रभु के निमित्त से चढ़ावे आदि के द्वारा उत्पन्न हुआ द्रव्य देवद्रव्य कहलाता है । इस द्रव्य का उपयोग जिनमंदिर - जिनप्रतिमा के निर्माण, जीर्णोद्धार, तीर्थरक्षा आदि कार्यों में होता है ।

431. दक्षिणावर्त :- दाहिनी ओर के आवर्त को दक्षिणावर्त कहते है ।

432. दावानल :- वन में चारों ओर से जो आग लगती हैं, उसे दावानल कहते है ।

433. दुष्कर :- जो कार्य अत्यंत कठिनाई से होता हो, उसे दुष्कर कहते है ।

434. देवानुप्रिय :- एक आदरवाची संबोधन । हे महानुभाव !

435. देवानांप्रिय :- अनादर वाची संबोधन । हे मुर्ख !

436. देहोत्सर्ग :- देह का त्याग, मृत्यु ।

437. द्युत :- जुआँ ।

438. द्वादशांगी :- बारह अंग । तीर्थंकर परमात्मा के मुख से तीन पदो का श्रवण कर बुद्धि निधान गण धर भगवंत द्वादशांगी सूत्रों की रचना करते है । समग्र जैन शास्त्र बारह अंगों (भागों) में विभाजित था ।

16

'ध'

439. धर्म :- दुर्गति में गिर रही आत्मा को जो धारण करे, उसे धर्म कहते हैं ।

440. धर्म चक्रवर्ती :- चक्रवर्ती, चक्ररत्न के द्वारा छह खंड पर विजय प्राप्त करता है । तीर्थंकर परमात्मा धर्म द्वारा चार गति का अंत लाते हैं, अतः वे धर्म चक्रवर्ती कहलाते हैं ।

For Private and Personal Use Only

441. धर्म ध्यान :- आर्त और रौद्र ध्यान अशुभ ध्यान कहलाते हैं, जब कि धर्मध्यान शुभ कहलाता है । इस धर्मध्यान के चार भेद हैं- 1) आज्ञा विचय 2) विपाक विचय 3) अपाय विचय 4) संस्थान विचय ।

442. धर्मास्तिकाय :- जीव और जड़ पदार्थ को गति में सहायता करनेवाला द्रव्य धर्मास्तिकाय है । यह द्रव्य चौदह राजलोक में व्याप्त है, अखंड है और एक है ।

443. ध्याता :- जो ध्यान करता है, उसे ध्याता कहते हैं ।

444. ध्येय :- जिसका ध्यान किया जाता है, उसे ध्येय कहा जाता है ।

445. धर्मकथानुयोग :- चार प्रकार के अनुयोग में एक अनुयोग धर्म कथानुयोग है । इसमें महापुरुषों के जीवनचरित्र आते हैं ।

446. धर्मदुर्लभ भावना :- बारह प्रकार की भावनाओं में एक भावना धर्मदुर्लभ भावना है । इस भावना के अन्तर्गत संसार में परिभ्रमण कर रही आत्मा को सद्धर्म की प्राप्ति कितनी दुर्लभ है, इसका विचार व चिंतन किया जाता है ।

447. धर्मनाथ :- इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में हुए 15 वें तीर्थंकर परमात्मा का नाम धर्मनाथ है ।

448. धर्मक्षमा :- 'क्षमा रखना यह आत्मा का धर्म है' ऐसा मानकर प्रतिकूल संयोगों में भी क्षमा भाव को धारण करना, उसे धर्मक्षमा कहते हैं ।

449. धातकी खंड :- मध्यलोक में ढाई द्वीप के अंदर आए हुए एक द्वीप का नाम धातकी खंड है । यह द्वीप चार लाख योजन विस्तारवाला है । इस द्वीप में दो भरत क्षेत्र, दो ऐरावत क्षेत्र और दो महाविदेह क्षेत्र आए हुए हैं ।

450. धूमप्रभा नरक :- धूएं के समान अंधकार से व्याप्त पाँचवीं नरक का नाम धूमप्रभा नरक है ।

451. धर्मकथा :- धर्म संबंधी तत्वचर्चा !

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

17

'न'

452. नवकार मंत्र :- जैनों का सबसे बड़ा मंत्र नवकार मंत्र है । इसमें किसी व्यक्ति का नामनिर्देश नहीं है । यह महामंत्र गुणप्रधान है । चौदह पूर्वों का सार है ।

453. नवपद :- अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप ये नवपद कहलाते हैं । सिद्धचक्र के प्रथम वलय में ये ही नवपद आते हैं ।

454. नवपद ओली :- चैत्र और आसो मास में सुद सप्तमी से पूर्णिमा तक के नौ दिनों में आयंबिल तप पूर्वक नवपद की भक्ति की जाती है, उसे नवपद ओली कहते हैं ।

455. निद्रा :- दर्शनावरणीय कर्म के उदय के कारण जीव को नींद आती है । इस निद्रा के भी 5 प्रकार हैं-

1) निद्रा :- सामान्य आवाज होने पर जो नींद में से जग जाता है, उसे निद्रा कहते हैं ।

2) निद्रा निद्रा :- जिसको जगाने के लिए थोड़ी मेहनत करनी पड़ती है ! बार-बार आवाज करने के बाद जो जगता है, उसे निद्रा-निद्रा कहते हैं ।

3) प्रचला :- चलते चलते ही जिसे नींद आती है, उसे प्रचला कहते हैं ।

4) प्रचला-प्रचला :- बैठे-बैठे या खड़े-खड़े ही जिसे नींद आती है, उसे प्रचला - प्रचला कहते हैं ।

5) थीणद्धि :- इस निद्रा के उदयवाला जीव, दिन में सोचा हुआ कार्य, रात्रि में नींद में ही कर लेता है, फिर भी उसे उसका ख्याल नहीं होता है, उसे थीणद्धि निद्रा कहते हैं । इस निद्रा के उदयवाला जीव अवश्य नरकगामी होता है ।

456. निगोद :- साधारण वनस्पतिकाय के जीव ! जिसके एक शरीर में अनंत जीव होते हैं । अपने एक श्वासोच्छ्वास जितने काल में निगोद जीव के 17 ½ भव हो जाते हैं ।

For Private and Personal Use Only

निगोद दो प्रकार की है - सूक्ष्म और बादर । जो आँखों से दिखाई देती है, उसे बादर निगोद कहते हैं और जो आँखों से अदृश्य होती है, उसे सूक्ष्म निगोद कहते हैं ।

सूक्ष्म निगोद के जीव भी दो प्रकार के होते हैं-

1) अव्यवहार राशि के जीव : जो जीव सूक्ष्मनिगोद में से एक भी बार बाहर नहीं निकले हों, वे अव्यवहार राशि के जीव कहलाते हैं ।

2) व्यवहार राशि के जीव : जो जीव निगोद में से बाहर निकलकर अन्य गति में जाकर वापस निगोद में पैदा हुए हों, वे व्यवहार राशि के जीव कहलाते हैं ।

457. निदान शल्य :- वर्तमान में किए गए धर्म के फलस्वरूप परलोक में राजा, चक्रवर्ती आदि पद अथवा धन आदि की प्राप्ति का संकल्प करना, उसे निदान शल्य कहते हैं । शल्य की तरह आत्मा के लिए हानिकारक होने से इस निदान को शल्य कहते हैं । यह निदान (नियाणा) दो प्रकार से होता है-

1) रागजन्य- जैसे-**'अगले जन्म में मैं स्त्रीवल्लभ बनूँ'**-कृष्ण के पिता वसुदेव ने पूर्वभव में यह नियाणा किया था ।

2) द्वेष जन्य- 'प्रतिभव में मैं उसका हत्यारा बनूँ ' - अग्निशर्मा तापस ने द्वेष में आकर गुणसेन राजा के प्रति यह नियाणा किया था ।

458. नवकारसी :- सूर्योदय से 48 मिनिट बीतने पर यह पच्चक्खाण आता है, तब तक चारों प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है । यह दिन संबंधी पच्चक्खाणों में सबसे छोटा पच्चक्खाण है ।

459. नियति :- जो होनेवाला है, वो ही होता है, उसे नियति कहते हैं । उसे भवितव्यता भी कहते हैं । कोई भी घटना बनती है, उसमें मुख्यतया काल, स्वभाव, भवितव्यता (नियति), कर्म और पुरुषार्थ रुप पाँच कारण काम करते हैं । उनमें नियति अर्थात् भवितव्यता भी एक कारण है ।

460. निर्ग्रंथ :- निर्ग्रंथ शब्द के अनेक अर्थ होते हैं । निर्ग्रंथ अर्थात् साधु ! जो बाह्य और अभ्यंतर ग्रंथि से रहित हैं, वे निर्ग्रंथ कहलाते हैं । धन-धान्य आदि के प्रति आसक्ति अभ्यंतर ग्रंथि है तथा बाहर कपड़ों में गाँठ आदि होना, बाह्य ग्रंथि है । इन दोनों ग्रंथियों से जो रहित होते हैं वे निर्ग्रंथ कहलाते हैं ।

For Private and Personal Use Only

आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से पाँच प्रकार के साधुओं में चौथे प्रकार के साधु निर्ग्रंथ कहलाते हैं । जहाँ राग - द्वेष का सर्वथा अभाव हो ! उपशम श्रेणी में 11 वें उपशांत मोह गुणस्थानक में रही आत्मा तथा क्षपकश्रेणी में क्षीणमोह - 12 वें गुणस्थानक में रही आत्मा निर्ग्रंथ कहलाती है ।

461. निर्जरा :- आत्मा पर लगे हुए कर्मों के आंशिक अथवा संपूर्ण क्षय को निर्जरा कहते हैं । यह निर्जरा दो प्रकार की है–

1) अकाम निर्जरा :- अनिच्छापूर्वक कष्ट आदि के सहन करने से जो निर्जरा होती है, उसे अकाम निर्जरा कहते हैं ।

2) सकाम निर्जरा :- इच्छा व प्रसन्नता पूर्वक कष्ट सहन करने से जो निर्जरा होती है, उसे सकाम निर्जरा कहते हैं ।

462. निरतिचार :- ग्रहण किए व्रत में जो दोष लगते हैं, उसे अतिचार कहते हैं । अतिचार रहित व्रतपालन को निरतिचार कहा जाता है ।

463. निरंजन-निराकार :- जिस आत्मा पर कर्म का लेश भी दाग न हो, वे निरंजन कहलाते हैं और जो आकार रहित हैं, वे निराकार कहलाते हैं । सिद्ध भगवंत निरंजन - निराकार है ।

464. निरामिष आहार :- मांस रहित भोजन को निरामिष आहार कहते हैं ।

465. निरालंबन ध्यान :- जिस ध्यान में मूर्ति आदि किसी भी बाह्य पदार्थ का आलंबन नहीं लिया जाता है, उसे निरालंबन ध्यान कहते हैं ।

466. निर्ममभाव :- जिसमें बाह्य पदार्थों के प्रति ममता भाव न हो, उसे निर्मम भाव कहते हैं ।

467. निराशंस भाव :- जो धर्म एक मात्र मोक्ष के उद्देश्य से ही किया जाता हो, जिसमें सांसारिक सुख की लेश भी अभिलाषा न हो, उसे निराशंस भाव कहते हैं ।

468. निरुपक्रम आयुष्य :- जिस आयुष्य पर किसी भी प्रकार का उपक्रम - उपघात नहीं लगता हो, उसे निरुपक्रम आयुष्य कहते हैं । तीर्थंकर आदि तिरसठ शलाका पुरुषों का निरुपक्रम आयुष्य होता है ।

For Private and Personal Use Only

469. निर्यामणा :- अंतिम समय - मौत के पूर्व, समाधि भाव की प्राप्ति के लिए जो उपदेश आदि सुनाया जाता है, उसे निर्यामणा कहते हैं ।

470. निर्यामक :- जो निर्यामणा कराता हो, उसे निर्यामक कहते हैं ।

471. निर्वेद :- पाँच इन्द्रियों के सांसारिक सुख में तीव्र अरुचि भाव को निर्वेद भाव कहते हैं । निर्वेद अर्थात् सांसारिक सुख में अरुचि भाव ।

472. निश्चय नय :- वस्तु के मूल स्वरूप को ग्रहण करनेवाले नय को निश्चयनय कहते हैं ।

473. नीवी :- छ विगई के त्याग रहित भोजन । उपधान व साधु - साधु के योगोद्वहन दरम्यान जो नीवी आती है, उसमें कच्ची छ विगई का त्याग होता है, परंतु विगई से बने नीवियाते की छूट होती है ।

474. नंदनवन :- यह वन मेरुपर्वत पर आया हुआ है । समभूतला पृथ्वी से 500 योजन ऊपर जाने पर यह वन आता है । देवता आकर यहाँ अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं । यह वन पर्वत के चारों ओर 500 योजन विस्तारवाला है ।

475. नंदावर्त :- अष्ट मंगल में एक मंगलकारी आकृति नंदावर्त की भी है । इसके केन्द्र में स्वस्तिक की आकृति होती है ।

476. नंदीश्वर द्वीप :- जंबूद्वीप से क्रमशः आगे बढ़ने पर वर्तुलाकार आठवाँ नंदीश्वर द्वीप आता है । इस द्वीप पर चारों दिशाओं में 13-13 जिनमंदिर हैं । ये मंदिर व प्रतिमाएँ शाश्वत हैं । पर्युषण व नवपद ओली के पर्वदिनों में देवतागण आकर परमात्मा की भक्ति करते हैं । कई विद्याधर व लब्धिधारी मुनि भी इस तीर्थ की यात्रा के लिए आते हैं ।

477. नाभिराजा :- ऋषभदेव प्रभु के पिता नाभिराजा ।

478. नामकर्म :- आत्मा पर लगे हुए आठ प्रकार के कर्मों में छठे कर्म का नाम नामकर्म है । शरीर की रचना आदि का कार्य यही कर्म करता है । यह अघाति कर्म है । इस कर्म के उत्तरभेद 103 हैं ।

479. नामनिक्षेप :- किसी भी वस्तु में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार निक्षेप होते हैं । इनके द्वारा वस्तु का स्पष्ट बोध होता है । किसी भी वस्तु के नाम को ' नामनिक्षेप ' कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

480. नारक :- संसार में परिभ्रमण कर रही आत्मा की चार गतियाँ हैं, उनमें एक गति नरक गति है । नरक गति में रहनेवाला नारक कहलाता है ।

481. नाराच संघयण :- संघयण अर्थात् हड्डियों की रचना । छह प्रकार के संघयण में तीसरे संघयण का नाम नाराच संघयण है । नाराच अर्थात् मर्कट बंध । इसमें दो हड्डियाँ परस्पर एक दूसरे को विंटला कर रहती हैं ।

482. नास्तिक :- आत्मा, कर्म, परलोक, परमात्मा आदि के अस्तित्व को नहीं माननेवाला नास्तिक कहलाता है ।

483. निकाचित कर्म :- अत्यंत गाढ़ अध्यवसाय से बँधा हुआ ऐसा कर्म, जिसकी सजा आत्मा को अवश्य भुगतनी ही पड़ती है ।

484. निमित्त कारण :- किसी भी कार्य की उत्पत्ति में मुख्य दो कारण काम करते हैं-

1) उपादान कारण और 2) निमित्त कारण ! 1) जो कारण, स्वयं कार्यरूप में परिणत होता हो, उसे उपादान कारण कहते हैं । जैसे - मिट्टी, यह घड़े का उपादान कारण है, क्योंकि मिट्टी ही घड़ा बनती है ।

2) जो कारण, कार्य की उत्पत्ति में सहायक बनते हैं, उन्हें निमित्त कारण कहते हैं । जैसे - घड़े को बनाने में कुंभार आदि निमित्त कारण हैं ।

485. निह्नव :- प्रभु के वचन का उत्थापन कर, अपनी बुद्धि के अनुसार पदार्थ का निरूपण करनेवाले । महावीर प्रभु के शासन में जमाली आदि नौ निह्नव हुए हैं । एक जिनवचन से विपरीत प्ररूपणा करने के कारण वे सभी निह्नव सम्यग् दर्शन से भ्रष्ट हो जाते हैं ।

486. न्यासापहार :- किसी के द्वारा रखी गई अमानत का अपहरण कर लेना न्यासापहार है । यह भी मृषावाद का ही एक भेद है ।

487. नैगम नय :- नय अर्थात् किसी भी वस्तु को समझने का एक दृष्टिकोण ! नय सात हैं । उसमें सबसे पहला नय नैगम नय है ।

नैगम नय वस्तु में भिन्न भिन्न रूप से रहे अनेक पर्यायों को, धर्मों को स्वीकार करता है । लोकरीति और उपचरित वस्तु को भी ग्रहण करता है ।

For Private and Personal Use Only

जैसे - किसी ने पूछा, ``यह रास्ता कहाँ जाता है ?'' जवाब मिला, ``मुंबई जाता है ।''

1) यद्यपि रास्ता तो अपनी जगह पर ही स्थिर है, उस रास्ते पर चलनेवाला व्यक्ति मुंबई जाता है । परंतु यह नय `यह रास्ता मुंबई जाता है'- इस वाक्य को भी सत्य मानकर स्वीकार करता है ।

2) `आज महावीर जन्म कल्याणक है ।' यद्यपि महावीर प्रभु का जन्म आज से 2600 से भी अधिक वर्ष पूर्व हुआ है, फिर भी यह नय भूत का वर्तमान में आरोपण करने पर भी उसे सत्य रूप में मानता है ।

488. न्यग्रोध परिमंडल :- मनुष्य शरीर की बाह्य रचना विशेष को संस्थान कहते हैं । संस्थान छह प्रकार के होते हैं । दूसरे संस्थान का नाम न्यग्रोध परिमंडल है । इस संस्थान में नाभि के ऊपर के अवयव प्रमाण युक्त होते हैं जब कि नीचे के अवयव प्रमाण रहित होते हैं ।

489. नैवेद्य पूजा :- तीर्थंकर परमात्मा की जो अष्ट प्रकारी पूजा होती है, उसमें सातवीं पूजा नैवेद्य पूजा है । इस पूजा में प्रभु के आगे चार प्रकार का आहार रखा जाता है ।

490. नव ग्रैवेयक :- पाँच अनुत्तर से नीचे और बारह वैमानिक देवलोक के ऊपर नवग्रैवेयक के देवविमान आए हुए हैं । ये देव भी कल्पातीत कहलाते हैं । अभव्य की आत्मा अपने निरतिचार द्रव्य चारित्र के फलस्वरूप नव ग्रैवेयक तक जा सकती है ।

491. नपुंसक वेद :- स्त्री और पुरुष दोनों के भोग की इच्छा को नपुंसक वेद कहते हैं । नपुंसक में स्त्री और पुरुष के मिश्र लक्षण होते हैं ।

492. नित्थार पारगा होह :- जैन साधु किसी भक्त पर वासक्षेप डालते समय, आशीर्वाद डालते समय **'नित्थार पारगा होह'** बोलते हैं । इसका अर्थ होता है - तुम इस संसार से जल्दी पार उतर जाओ ।

493. नित्य :- जो वस्तु हमेशा रहनेवाली हो उसे नित्य कहते हैं ।

494. नित्यानित्य :- प्रत्येक वस्तु द्रव्य से नित्य है और पर्याय से अनित्य है । दोनों भावों की एक साथ विवक्षा करनी हो तब नित्यानित्य कहा जाता है ।

For Private and Personal Use Only

495. निराहारी अवस्था :- जहाँ कभी भी आहार लेने की जरूरत नहीं हो, ऐसी आत्मा की मुक्तावस्था को निराहारी अवस्था कहते हैं ।

496. निर्विभाज्य काल :- केवली भगवंत की दृष्टि में भी जिस काल का अब विभाजन नहीं हो सकता हो, उस काल को निर्विभाज्य काल कहते हैं ।

497. निर्जीव देह :- जिस देह में से जीव निकल गया हो उसे निर्जीव देह कहते हैं ।

498. नीच गोत्र :- आठ प्रकार के कर्म में सातवें कर्म का नाम गोत्र कर्म है । इस कर्म के दो भेद हैं-ऊँच गोत्र और नीच गोत्र । जिस कर्म के उदय से जीव हल्के-निंदनीय कुल में पैदा होता है, वह नीच गोत्र कर्म कहलाता है ।

499. नित्य पिंड :- साधु हमेशा एक ही घर से आहार ग्रहण करे तो वह नित्य पिंड कहलाता है ।

500. नवांगी पूजा :- नौ अंगों पर जो पूजा की जाती हैं, उसे नवांगी पूजा कहते है ।

501. निर्वाण कल्याणक :- तीर्थंकर परमात्मा का पांचवां कल्याणक । निर्वाण अर्थात् मोक्ष ।

502. निरतिचार चारित्र :- जिस चारित्र के पालन में लेश भी अतिचार-दोष नहीं लगता हो, उसे निरतिचार चारित्र कहते है ।

503. निरवद्य :- अवद्य अर्थात् पाप, निरवद्य अर्थात् पाप रहित ।

504. निराकार :- जिसमें किसी प्रकार का आकार न हो, उसे निराकार कहते है । सिद्ध भगवंत निराकार परमात्मा है । आत्मा का शुद्ध स्वरुप निराकार है ।

505. निर्दयता :- जिस प्रवृत्ति में लेश भी दया की भावना न हो ।

506. निष्कलंक :- जिसमें लेश भी कलंक, दाग न हो उसे निष्कलंक कहते है ।

507. नीचगोत्र :- गोत्र कर्म का एक चेद, जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को नीच कुल की प्राप्ति होती है ।

For Private and Personal Use Only

18

'प'

508. पक्ष :- इस शब्द के अनेक अर्थ होते हैं । 1) समान विचारधारावाले संगठन को भी पक्ष कहा जाता है । 2) जिस स्थान में साध्य के अस्तित्व का निश्चय किया जाता है, उसे भी पक्ष कहते हैं । 3) हिंदु व जैन पंचांग के अनुसार एक मास के भी दो पक्ष होते हैं-शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष ।

509. पाक्षिक प्रतिक्रमण :- पंद्रह दिन के पापों के प्रायश्चित्त रूप निश्चित तिथि को जो प्रतिक्रमण किया जाता है, उसे पाक्षिक प्रतिक्रमण कहते हैं ।

510. पच्चक्खाण :- पच्चक्खाण अर्थात् प्रतिज्ञा । दिन में या रात्रि में आहार आदि का जो त्याग किया जाता है उसे नवकारसी आदि का पच्चक्खाण कहते हैं ।

511. पडिलेहण :- साधु-साध्वी और पौषध में रहे हुए श्रावक श्राविका सुबह - शाम अपने वस्त्र - पात्र आदि उपकरणों के उपभोग के लिए जीवरक्षा हेतु जो निरीक्षण करते हैं, उसे पडिलेहण कहते हैं ।

512. पद्मासन :- योग के एक विशिष्ट आसन को पद्मासन कहते हैं । पाँव के ऊपर पाँव चढ़ाकर रीढ़ की हड्डी को सीधाकर बैठा जाता है ।

513. पदस्थ ध्यान :- मंत्राक्षर आदि पदों का आलंबन लेकर जो ध्यान किया जाता है, उसे पदस्थ ध्यान कहते हैं ।

514. पदस्थ अवस्था :- तीर्थंकर परमात्मा की तीन अवस्थाएँ होती हैं- 1) पिंडस्थ 2) पदस्थ 3) रूपस्थ । केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद अष्टमहाप्रातिहार्य आदि शोभायुक्त परमात्मा की जो अवस्था होती है, उसे पदस्थ अवस्था कहते हैं ।

515. पिंडस्थ अवस्था :- पिंड अर्थात् देह । तीर्थंकर परमात्मा की देह संबंधी अवस्था को पिंडस्थ अवस्था कहते हैं । इसके तीन भेद हैं- 1) जन्मावस्था 2) राज्यावस्था 3) श्रमणावस्था ।

516. पदानुसारी लब्धि : किसी भी श्लोक के एक पद को जानने से संपूर्ण श्लोक का ज्ञान हो जाता है, उसे पदानुसारी लब्धि कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

517. पद्मलेश्या :- छह प्रकार की लेश्याओं में 5 वीं लेश्या पद्मलेश्या कहलाती है ।

518. परमाणु :- पुद्गल का छोटे से छोटा अंश, जिसका पुनः विभाजन नहीं हो सकता हो, उसे परमाणु कहते हैं ।

519. परमाधामी देव :- अधोलोक में रहनेवाले क्षुद्रवृत्तिवाले देवता, जो नरक के जीवों को भयंकर पीडा देते रहते हैं । वे अत्यंत अधार्मिक होते हैं । वे मरकर अंडगोलिक बनते हैं और फिर नारक बनकर नरक संबंधी वेदना सहन करते हैं ।

520. पंच परमेष्ठी :- परम अर्थात् श्रेष्ठ । श्रेष्ठ पद पर रहे हुए होने के कारण परमेष्ठी कहलाते हैं । परमेष्ठी पाँच हैं-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधु !

521. परिग्रह :- बाह्य पदार्थों पर रही आसक्ति को परिग्रह कहते हैं । यह परिग्रह दो प्रकार का है - बाह्य और अभ्यंतर ।

बाह्य परिग्रह के 9 भेद हैं- 1) क्षेत्र 2) वास्तु (मकान आदि) 3) सोना 4) चांदी 5) रोकड़ धन 6) धान्य 7) द्विपद (नौकर आदि) 8) चतुष्पद (गाय,बैल,घोड़ा आदि) 9) गृह सामग्री !

अभ्यंतर परिग्रह के 14 भेद हैं- 1) हास्य 2) रति 3) अरति 4) भय 5) शोक 6) दुगुंछा 7) पुरुषवेद 8) स्त्रीवेद 9) नपुंसक वेद 10) क्रोध 11) मान 12) माया 13) लोभ 14) मिथ्यात्व ।

522. परिग्रह परिमाणव्रत :- इस व्रत द्वारा श्रावक धन, धान्य आदि 9 प्रकार के बाह्य परिग्रह का परिमाण निश्चित करता है अर्थात् अमुक प्रमाण से अधिक धन आदि मैं नहीं रखूंगा ।

523. परिग्रह संज्ञा :- धन आदि के प्रति रही आसक्ति को परिग्रह संज्ञा कहते हैं । यद्यपि यह संज्ञा सभी जीवों में न्यूनाधिक प्रमाण में पाई जाती है, फिर भी देवलोक में रहे देवताओं में यह संज्ञा अत्यधिक प्रमाण में होती है ।

524. परिषह :- मोक्षमार्ग से विचलित नहीं होते हुए कर्मों को क्षय करने के लिए जो समतापूर्वक सहन किया जाता है, वे परिषह कहलाते हैं । भूख, प्यास आदि कुल 22 परिषह हैं ।

For Private and Personal Use Only

525. पर्याप्ति :- जीव की शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते हैं । नए जन्म को धारण करते समय, देह के निर्माण के लिए जीव वातावरण में से पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन के रूप में परिणत करता है । आहार आदि कुल छह पर्याप्तियाँ होती हैं ।

526. पर्याय :- द्रव्य की बदलती हुई अवस्था को पर्याय कहते हैं । जैसे-बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि मनुष्य के पर्याय हैं ।

527. पर्यायार्थिक नय :- वस्तु के पर्याय विशेष को लक्ष्य करके पदार्थ का निरूपण करनेवाला नय पर्यायार्थिक नय कहलाता है । 1) ऋजुसूत्र 2) शब्दनय 3) समभिरूढ़ और 4) एवंभूत नय - ये चार पर्यायार्थिक नय कहलाते हैं ।

528. पर्याय स्थविर :- 20 वर्ष से अधिक पर्यायवाले मुनि को पर्याय स्थविर कहते हैं ।

529. पर्युषण महापर्व :- जैन धर्म का सबसे बड़ा पर्व पर्युषण महापर्व है जो आठ दिन मनाया जाता है । इसे पर्वाधिराज भी कहते हैं । इस पर्व के माध्यम से जगत् में रहे सभी अपराधों की क्षमायाचना की जाती है ।

530. पंचमीगति :- मोक्ष को पंचमी गति कहते हैं । चारगति देव, मनुष्य - तिर्यंच व नारक संसार में हैं ।

531. पंचकल्याणक :- तारक तीर्थंकर परमात्मा के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष ये पाँच कल्याणक कहलाते है । परमात्मा के कल्याणक के ये दिन जगत् के सभी जीवों के भी कल्याण में कारणभूत बनते हैं ।

532. पंचदिव्य :- तीर्थंकर परमात्मा का जब पारणा होता है, तब देवतागण पंचदिव्य प्रगट करते हैं जो इसप्रकार हैं-

1) जघन्य से साढ़े बारह लाख व उत्कृष्ट से साढ़े बारह करोड सोना मोहर की वृष्टि होती है ।

2) सुगंधित जल की वृष्टि होती है ।

3) सुगंधित पुष्पों की वृष्टि होती है ।

4) आकाश में देव दुंदुभि का नाद होता है ।

5) देवता `अहो दानं अहो दानं की घोषणा करते हैं ।'

For Private and Personal Use Only

533. पंच महाव्रत :- साधु - साध्वी जीवन पर्यंत पाँच महाव्रतों की भीष्म प्रतिज्ञा का पालन करते हैं । वे पाँच प्रतिज्ञाएँ ही पाँच महाव्रत कहलाती हैं ।
1) जिंदगी भर के लिए मन, वचन और काया से हिंसा के त्याग की प्रतिज्ञा ।
2) जिंदगी भर के लिए मन, वचन और काया से झूठ नहीं बोलने की प्रतिज्ञा ।
3) जिंदगी भर के लिए मन, वचन और काया से चोरी के त्याग की प्रतिज्ञा ।
4) जिंदगी भर के लिए मन, वचन और काया से मैथुन के त्याग की प्रतिज्ञा ।
5) जिंदगी भर के लिए मन, वचन और काया से परिग्रह के त्याग की प्रतिज्ञा ।

534. पंचमुष्टि लोच :- तीर्थंकर परमात्मा जब दीक्षा लेते हैं, तब चार मुष्टि से मस्तक के बाल और एक मुष्टि द्वारा दाढ़ी - मूंछ के बालों का लोच करते हैं ।

535. पंचाचार :- साधु - साध्वी के लिए प्रतिदिन पालन करने योग्य पाँच आचार हैं- 1) ज्ञानाचार 2) दर्शनाचार 3) चारित्राचार 4) तपाचार और 5) वीर्याचार ।

536. पंचास्तिकाय :- 14 राजलोक रूप यह विश्व पंचास्तिकाय रूप है । 1) धर्मास्तिकाय 2) अधर्मास्तिकाय 3) आकाशास्तिकाय 4) पुद्गलास्तिकाय 5) जीवास्तिकाय । अस्ति = प्रदेश, काय = समूह ! प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं ।

1) धर्मास्तिकाय :- जीव और पुद्गल को गति में सहायता करता है ।

2) अधर्मास्तिकाय :- जीव और पुद्गल को स्थिरता में सहायता करता है ।

3) आकाशास्तिकाय :- जीवादि पदार्थों को अवकाश प्रदान करता है ।

4) पुद्गलास्तिकाय :- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण, भाषा, श्वासोच्छ्वास और मन - ये पुद्गल की आठ वर्गणाएँ हैं ।

5) जीवास्तिकाय :- जीव के आत्म प्रदेशों के समूह को जीवास्तिकाय कहते हैं ।

537. पुण्यानुबंधी पुण्य :- जिस पुण्य के उदय में नवीन पुण्य का बंध हो, उसे पुण्यानुबंधी पुण्य कहते हैं । इस पुण्य के उदय से जीवात्मा को उच्च प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है, फिर भी वह आत्मा उन सुखों में आसक्त

For Private and Personal Use Only

नहीं होती है । उदा - शालिभद्र ! यह पुण्य शक्कर पर बैठी हुई मक्खी की तरह है ।

538. पापानुबंधी पुण्य :- जिस पुण्य के उदय से सांसारिक भोग सुख तो मिलते हैं, परंतु साथ में नवीन पाप करने की ही प्रवृत्ति होती है ।

कसाई आदि को प्राप्त धन संपत्ति पापानुबंधी पुण्य के उदयवाली है ।

539. पुण्यानुबंधी पाप :- उदय पाप का हो परंतु पुण्य की प्रवृत्ति चालू हो, उसे पुण्यानुबंधी पाप कहते हैं । उदा. पूणियाश्रावक ! पाप के उदय के कारण उसके बाह्य जीवन में गरीबी थी । परन्तु उसमें भी सामायिक - समताभाव और साधर्मिक भक्ति की साधना के फलस्वरूप उत्कृष्ट पुण्य का ही बंध चल रहा था ।

540. पुण्योदय :- जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को पाँच इन्द्रियों के अनुकूल सुख की सामग्री प्राप्त होती है, उसे पुण्योदय कहते हैं ।

541. पापोदय :- जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को पाँच इन्द्रियों के प्रतिकूल दुःख की सामग्री प्राप्त होती है, उसे पापोदय कहते हैं ।

542. परिहार विशुद्धि :- सामायिक, उपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात - इन पाँच प्रकार के चारित्रों में परिहार विशुद्धि तीसरे नंबर का चारित्र है । इस चारित्र की आराधना के लिए समुदाय से अलग होकर तप आदि पूर्वक विशेष आराधना की जाती है ।

543. पंचेन्द्रिय जीव :- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र रूप पाँचों इन्द्रियों को धारण करनेवाले जीव को पंचेन्द्रिय कहते हैं । मनुष्य, देव, नारक और तिर्यंच इन चारों गतियों में मनुष्य, देव और नारक तो नियम से पंचेन्द्रिय ही होते हैं, तिर्यंच में भी हाथी, घोड़े, गाय आदि पंचेन्द्रिय कहलाते हैं ।

544. पंडित मरण :- समाधि भाव युक्त मरण को पंडित मरण कहते हैं ।

545. पारिणामिकी बुद्धि :- उम्र अथवा अनुभव बढ़ने से जो बुद्धि विकसित होती है, उसे पारिणामिकी बुद्धि कहते हैं ।

546. पारिष्ठापनिका समिति :- साध्वाचार के पालन के लिए 1) ईर्यासमिति 2) भाषा समिति 3) ऐषणासमिति 4) आदानभंडमत्त निक्षेपणा समिति और

For Private and Personal Use Only

5) पारिष्ठापनिका समिति-इन पाँच समितियों का पालन करना होता है ।

साधु जीवन में कोई अनुपयोगी वस्तु आ गई हो अथवा शरीर के मल-मूत्र आदि के विसर्जन के लिए इस समिति का पालन किया जाता है अर्थात् परठने योग्य उन पदार्थों को निर्जीव भूमि में इस रीति से परठा जाता है कि अन्य कोई उस वस्तु का उपयोग न कर पाए ।

547. पांडुक वन :- मेरु पर्वत पर सबसे ऊपर पांडुकवन आया हुआ है, जहाँ पर तीर्थंकर परमात्माओं के देवताओं द्वारा जन्माभिषेक होते हैं ।

548. पांडुकंबला शिला :- मेरु पर्वत पर आई हुई एक शिला-जहाँ पश्चिम महाविदेह में पैदा हुए तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है ।

549. पुद्गल परावर्तकाल :- जिस काल में एक आत्मा जगत् में रहे सभी पुद्गलों का उपभोग कर ले, उस काल को एक पुद्गल परावर्तकाल कहते हैं । इस काल में अनंत उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी व्यतीत हो जाती हैं ।

550. पुरुषार्थ :- जीव के प्रयत्न विशेष को पुरुषार्थ कहते हैं । 1) धर्मपुरुषार्थ 2) अर्थपुरुषार्थ 3) कामपुरुषार्थ और 4) मोक्षपुरुषार्थ ।

551. पृथ्वीकाय :- पृथ्वी स्वरूप जीवों को पृथ्वीकाय कहते हैं ।

552. पौषध व्रत :- श्रावकों के लिए पर्वतिथि आदि में करने योग्य चार प्रकार के शिक्षाव्रतों में तीसरा शिक्षाव्रत पौषध व्रत है । जिस प्रकार औषध से शरीर पुष्ट बनता है, उसी प्रकार पौषध से आत्मा पुष्ट बनती है । यह पौषध सिर्फ दिन के चार प्रहर, रात्रि के चार प्रहर अथवा दिन - रात के आठ प्रहर का एक साथ लिया जा सकता है ।

553. पुष्करवर द्वीप :- जिस द्वीप में कमल अत्यधिक प्रमाण में पैदा होते हैं, उस द्वीप का नाम पुष्करवर द्वीप है । मध्यलोक में जंबुद्वीप से यह तीसरा द्वीप है । यह द्वीप कालोदधि समुद्र के चारों ओर वर्तुलाकार में है । इसका व्यास 16 लाख योजन है । इस द्वीप के मध्य में चारों ओर मानुषोत्तर पर्वत आया हुआ है, जो इस द्वीप को दो भागों में विभक्त करता है । अंदर का भाग मनुष्य लोक में आता है, जहाँ मनुष्य की उत्पत्ति होती है, जब कि बाहर के आधेभाग में मनुष्य पैदा नहीं होते हैं ।

554. पुष्करावर्त मेघ :- यह श्रेष्ठ प्रकार का मेघ है । इसके बरसने से धरती अत्यंत ही फल देनेवाली बन जाती है ।

For Private and Personal Use Only

555. पुष्कलावती विजय :- जंबुद्वीप के पूर्व महाविदेह की 8वीं विजय का नाम पुष्कलावती विजय है जहाँ पर सीमंधरस्वामी भगवंत विद्यमान हैं ।

556. पूर्व :- इसके अनेक अर्थ हैं-

1) सूर्य उदय होनेवाली दिशा को **पूर्व दिशा** कहते हैं ।

2) पूर्व का अर्थ पहला भी होता है, जैसे - पूर्वाह्नकाल ।

3) 84 लाख को 84 लाख से गुणने पर जो संख्या आती है, उसे भी पूर्व कहते हैं ।

4) द्वादशांगी के बारहवें अंग दृष्टिवाद में 14 पूर्व आते हैं ।

557. पूर्वधर महर्षि :- पूर्व में रहे श्रुत के ज्ञान को धारण करनेवाले महर्षि को पूर्वधर महर्षि कहते हैं ।

558. पूर्वांग :- 84 लाख वर्ष के समय को पूर्वांग कहते हैं ।

559. प्रवचन :- प्रकृष्ट वचन को प्रवचन कहते हैं । प्रभु के वचन श्रेष्ठ होते हैं, अतः प्रभु के उपदेश को प्रवचन भी कहते हैं ।

560. प्रवचन माता :- साधु-साध्वी के लिए नियमित रूप से पालन करने योग्य जो पाँच समिति और तीन गुप्तियाँ हैं, उनके लिए एक संयुक्तशब्द प्रवचनमाता है । इन प्रवचन माताओं के पालन से आत्मा कर्म के बंधन से मुक्त होकर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करती है ।

561. प्रवचन वात्सल्य :- चतुर्विध संघ और साधर्मिक के प्रति जो निःस्वार्थ प्रेम होता है, उसे प्रवचन वात्सल्य कहते हैं ।

562. प्रवचन प्रभावना :- आचार्य भगवंत आदि द्वारा वीतराग प्रभु के उपदेशों के प्रचार - प्रसार को प्रभावना कहते हैं । अजैनों के दिल में भी जैन धर्म के प्रति अपूर्व आकर्षण भाव पैदा हो ऐसी उपदेश पद्धति को प्रवचन प्रभावना कहते हैं ।

563. प्राणातिपात :- प्रमाद के योग से अन्यजीवों के मन, वचन और काया को पीड़ा पहुँचाना, उसे प्राणातिपात कहते हैं, उसे हिंसा भी कहते हैं ।

564. पैशुन्य :- 18 प्रकार के पापस्थानकों में 15 वें नंबर का नाम पैशुन्य है । पैशुन्य अर्थात् चाड़ीचुगली खाना - इधर की बात उधर करना ।

For Private and Personal Use Only

565. प्रत्याख्यानीय :- सर्व विरति गुण को रोकनेवाले मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृति ! इसके चार भेद हैं-प्रत्याख्यानीय क्रोध, प्रत्याख्यानीय मान, प्रत्याख्यानीय माया और प्रत्याख्यानीय लोभ । इस कर्म का उदय होने पर आत्मा को सर्वविरति धर्म की प्राप्ति नहीं होती है । इस कर्म की स्थिति चार मास की है ।

566. प्रदेश बंध :- कर्म रूप पुद्गल स्कंधों का आत्मप्रदेशों के साथ जुड़ना उसे प्रदेश बंध कहते हैं ।

567. प्रत्यक्ष ज्ञान :- मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना जो आत्मा को साक्षात् ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं । अवधिज्ञान, मनः पर्यवज्ञान और केवलज्ञान में मन और इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं रहती है, अतः उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं ।

568. परोक्ष ज्ञान :- मन और इन्द्रियों की सहायता से आत्मा को जो ज्ञान होता है, उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं । इस ज्ञान के दो भेद हैं- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ।

569. प्रमोद भावना :- गुणीजनों के गुणों को देखकर मन में खुश होना, उसे प्रमोद भावना कहते हैं ।

570. प्रमाद :- जिस क्रिया से आत्मा अपने मूलभूत स्वभाव को भूल जाती है, वह सब प्रमाद कहलाता है । इसके मुख्य पांच भेद हैं- 1) मद्य 2) विषय 3) कषाय 4) निद्रा और 5) विकथा ।

571. प्रव्रज्या :- सर्व संग के त्याग रूप मोहमाया के बंधनों को तोड़कर भागवती दीक्षा अंगीकार करना, उसे प्रव्रज्या कहते हैं ।

572. प्रशम :- आत्मा में सम्यग् दर्शन गुण पैदा होता है, तब उस सम्यग् दर्शन के सूचक 5 लक्षण पैदा होते हैं- 1) प्रशम 2) संवेग 3) निर्वेद 4) अनुकंपा और 5) आस्तिक्य । प्रशम अर्थात् अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय का शांत हो जाना ।

573. प्रशस्त कषाय :- जिन कषायों का सेवन आत्मा के लिए हानिकारक न हो, बल्कि लाभ करते हों, वे प्रशस्त कषाय कहलाते हैं ।

574. प्रायश्चित्त :- प्रायः करके जो चित्त को अवश्य शुद्ध करता है, उसे

For Private and Personal Use Only

प्रायश्चित्त कहते हैं । आत्मा पर लगे पाप रूपी मल के प्रक्षालन के लिए प्रायश्चित्त सर्वश्रेष्ठ उपाय है । जानते - अजानते जीवन में जो भी पाप हो गए हों, उसे उसी रूप में गुरु के आगे निवेदन करना, उसे आलोचना कहते हैं । उन पापों के फलस्वरूप गुरु जो भी दंड दे, उसे स्वीकार करना, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं ।

575. प्रातिहार्य :- तीर्थंकर परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट पुण्य के उदय के प्रतीक रूप आठ प्रातिहार्य होते हैं- 1) अशोकवृक्ष 2) पुष्प वृष्टि 3) दिव्यध्वनि 4) चामर 5) सिंहासन 6) देवदुंदुभि 7) तीनछत्र 6) भामंडल ।

576. प्रश्नव्याकरण :- बारह अंगों में से दसवें अंग का नाम प्रश्नव्याकरण है । इसमें अनेक प्रश्नों के जवाब हैं ।

577. प्रासुक :- जीवरहित अचित्त भोजन को प्रासुक भोजन कहते हैं ।

578. प्रवर्तक :- साधु समुदाय को संयम में दृढ़ रखनेवाले आचार्य आदि की तरह प्रवर्तक भी एक पद है ।

579. प्रवर्तिनी :- साध्वी के समुदाय को संयम में दृढ़ रखनेवाली मुख्य साध्वी । जो अपने समुदाय का योग - क्षेम करती है ।

580. प्राप्यकारी इन्द्रियाँ :- पदार्थ और इन्द्रियों का संयोग संबंध होने के बाद, इन्द्रियों को जो पदार्थज्ञान होता है, वे इन्द्रियाँ प्राप्यकारी कहलाती हैं । जैसे 1) स्पर्शनेन्द्रिय 2) रसनेन्द्रिय 3) घ्राणेन्द्रिय और 4) श्रोत्रेन्द्रिय - ये चार इन्द्रियाँ पदार्थ के परमाणुओं का स्पर्श करके पदार्थ का बोध करती है । जैसे- जब तक खाद्य पदार्थ का रसनेन्द्रिय के साथ संयोग न हो तब तक रसनेन्द्रिय को उस पदार्थ में रहे स्वाद Taste का बोध नहीं होता है ।

581. पंचांग प्रणिपात :- दो घुटने, दो हाथ और एक मस्तक इन पाँच अंगों को झुकाकर जो प्रणाम किया जाता है, उसे पंचांग प्रणिपात कहते हैं ।

582. पर परिवाद :- अठारह पापस्थानकों में से 16 वें पापस्थानक का नाम 'पर परिवाद' है । इसका अर्थ है - दूसरों में रहे हुए दोषों की निंदा करना ।

583. परलोक :- वर्तमान जन्म के बाद के भव को परलोक कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

584. पूर्वजन्म :- वर्तमान जन्म से पहले के जन्म को पूर्वजन्म कहते हैं।

585. पुनर्जन्म :- वर्तमान जन्म के बाद के जन्म को पुनर्जन्म कहते हैं।

586. परावर्तना :- स्वाध्याय के पाँच प्रकारों में तीसरा प्रकार। स्वाध्याय के 5 प्रकार-वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा ! परावर्तना अर्थात् ग्रहण किए सूत्र आदि को पुनः पुनः याद करना।

587. परस्त्रीगमन :- अन्य की विवाहिता स्त्री के साथ शारीरिक भोग करना, उसे परस्त्रीगमन कहते हैं। मानव को शैतान बनानेवाले 7 प्रकार के व्यसनों में परस्त्रीगमन भी एक भयंकर व्यसन है। अपनी विवाहिता स्त्री के अलावा किसी भी अन्य स्त्री का भोग करना।

588. पल्योपम :- एक योजन लंबे-चौड़े और गहरे कुएँ में 7 दिन के युगलिक बच्चे के बालों को काटकर, उनके पुनः असंख्य टुकड़े कर उस कुएँ को ठूंस-ठूंस कर भर दिया जाय, उसके बाद प्रति 100 वर्ष के बाद उस कुएँ में से 1-1 बाल को बाहर निकाला जाय, जितने काल में वह कुआँ खाली होगा, उस काल को एक पल्योपम कहते हैं।

589. फलादेश :- जन्म कुंडली देखकर ज्योतिषी जो फल बतलाता है, उसे फलादेश कहते हैं।

590. फोड़ी कर्म :- कुएँ-तालाब आदि खुदाना। जिस कार्य में पृथ्वी के पेट को फोड़ा जाता है, उसे फोड़ीकर्म कहते हैं।

591. फाल्गुण :- एक महिने का नाम।

592. बकुश :- चारित्र के उत्तर गुणों में दोष लगाकर जो चारित्र को दोष युक्त करते हैं, उन्हें बकुश कहते हैं।

593. बलदेव :- 63 शलाका पुरुषों में 9 बलदेव होते हैं। वासुदेव के बड़े भाई के रूप में बलदेव का जन्म होता है।

For Private and Personal Use Only

594. बहिरात्मा :- नाशवंत देह में ही आत्मबुद्धि करके जो राग - द्वेष में ही नित्य संतप्त होते हैं, उन आत्माओं को बहिरात्मा कहते हैं । ये आत्माएँ हेय- उपादेय के ज्ञान से रहित होती हैं ।

595. बंध :- आत्मप्रदेशों के साथ कार्मण वर्गणा के परमाणुओं का जुड़ जाना, उसे बंध कहते हैं ।

596. बादर निगोद :- कंदमूल आदि साधारण वनस्पतिकाय के जीव जिन्हें चर्म चक्षुओं द्वारा देखा जा सकता है - उन्हें बादर निगोद कहते हैं ।

597. बोधिलाभ :- सम्यक्त्व की प्राप्ति ।

598. ब्रह्म देवलोक :- 12 वैमानिक देवलोक में 5 वें देवलोक का नाम ब्रह्म देवलोक है ।

599. ब्रह्मचर्य :- ब्रह्म अर्थात् आत्मा । उसमें रमणता करना, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं । स्त्री-पुरुष की मैथुन त्याग संबंधी बाह्य क्रिया को भी व्यवहार से ब्रह्मचर्य कहा जाता है ।

600. ब्रह्म गुप्ति :- ब्रह्मचर्य व्रत के रक्षण के लिए जिन नौ वाड़ों का पालन किया जाता है, उन्हें ब्रह्मगुप्ति कहा जाता है । ब्रह्मचर्यव्रत रक्षण के लिए नौ वाड़ें हैं-

1. स्त्री, पशु व नपुंसक से रहित बस्ती में रहना ।
2. स्त्री कथा का त्याग ।
3. निषद्या त्याग-स्त्री के आसन पर 48 मिनिट तक नहीं बैठना ।
4. स्त्री के अंगोपांग दर्शन का त्याग ।
5. संलग्न दिवाल में रहे दंपत्तिवाले स्थान का त्याग ।
6. पूर्वकृत काम-क्रीड़ा का विस्मरण ।
7. प्रणीत अर्थात् रसप्रद आहार का त्याग ।
8. अति भोजन का त्याग ।
9. विभूषा-शरीर के शणगार का त्याग ।

601. बारह पर्षदा :- परमात्मा के समवसरण में देवता आदि के बैठने के लिए बारह पर्षदाएँ होती हैं-

1-4 भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक देवता ।

For Private and Personal Use Only

5-8 भवनपति,व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक देवियाँ ।

9-12 साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ।

602. बालतप :- अज्ञानता से विवेकरहित जो तप किया जाता है, वह बालतप कहलाता है । पंचाग्नि तप, अग्नि-प्रवेश, पर्वत पर से झंपापात आदि बालतप कहलाते हैं ।

603. बाह्यतप :- जो तप बाहर से दिखाई देता है । जिस तप का प्रभाव बाह्यशरीर पर पड़ता है, वह बाह्यतप कहलाता है । जो तप अजैनों में भी होता है। बाह्यतप के छह भेद हैं-

1) अनशन :- अशन, पान, खादिम और स्वादिम का अल्पकाल अथवा दीर्घकाल के लिए त्याग करना । जैसे - नवकारसी, पोरिसी, आयंबिल, एकासना, उपवास आदि ।

2) ऊणोदरी :- भूख से कम भोजन करना ।

3) वृत्तिसंक्षेप :- खाद्य पदार्थों की संख्या निर्धारित करना ।

4) रसत्याग :- छह विगई में से एक - दो अथवा सभी का त्याग करना ।

5) कायक्लेश :- लोच आदि कष्ट सहन करना ।

6) संलीनता :- अंगोपांग को संकुचित कर बैठना ।

604. बेइन्द्रिय जीव :- स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय रूप दो इन्द्रियों को धारण करनेवाले जीवों को बेइन्द्रिय जीव कहते हैं । जैसे - शंख, कौड़ा, कौड़ी आदि ।

605. बक ध्यान :- बगले की तरह ध्यान करना । बगला एकाग्रचित्त होता हैं, परंतु सिर्फ मच्छली को पकडने के लिए ।

606. बाहुबली :- ऋषभदेव भगवान के दूसरे पुत्र का नाम । भरत के छोटेभाई ।

607. बाहुयुद्ध :- दो हाथों से जो युद्ध किया जाता है, वह बाहुयुद्ध कहलाता है ।

608. बुभुक्षा :- खाने की इच्छा ।

For Private and Personal Use Only

21

'भ'

609. भवचक्र :- जहाँ आत्मा जन्म - मरण के चक्र में घूमती रहती है, उसे भवचक्र कहते हैं ।

610. भरत क्षेत्र :- जंबुद्वीप के दक्षिण भाग में आया हुआ क्षेत्र भरत क्षेत्र है । जो दूज के चंद्र के समान आकारवाला है । उसका व्यास 526 योजन है । जंबुद्वीप में एक, धातकी खंड में दो और पुष्करार्घ द्वीप में दो इस प्रकार कुल 5 भरतक्षेत्र आए हुए हैं ।

611. भवनपति :- देवताओं के चार प्रकार हैं-भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक ! भवनपति निकाय में असुरकुमार आदि 10 भेद हैं ।

612. भवधारणीय :- देवताओं के शरीर दो प्रकार के होते हैं- 1) भवधारणीय 2) उत्तरवैक्रिय । जो शरीर जन्म से ही होता है, वह भवधारणीय कहलाता है और वैक्रिय लब्धि द्वारा जो शरीर बनाया जाता है, उसे उत्तरवैक्रिय शरीर कहते हैं । उत्तर वैक्रिय शरीर मर्यादित समय तक ही रहता है ।

613. भवनिर्वेद :- संसार के सुखों के प्रति जो वैराग्यभाव पैदा होता है, उसे भवनिर्वेद कहते हैं ।

614. भवप्रत्ययिक :- प्राप्त भव के कारण ही आत्मा को मिलनेवाली शक्तियाँ ! जैसे - पक्षी का भव मिलने से उड़ने की शक्ति सहज प्राप्त होती है । जलचर प्राणी के रूप में पैदा होने से पानी में तैरने की शक्ति सहज प्राप्त होती है । देव और नारक के जीवों को भी अवधिज्ञान और वैक्रिय शरीर, देव और नारक के जन्म के कारण ही प्राप्त होते हैं ।

615. भवभीरु :- संसार के वास से भयभीत बनी आत्मा को भवभीरु कहते हैं ।

616. भवाभिनंदी :- संसार के सुखों में ही अत्यंत आसक्त बनी आत्मा को भवाभिनंदी कहते हैं ।

617. भामंडल :- प्रभु की मुखमुद्रा के मस्तक के पीछे रहा हुआ एक तेजस्वी चक्र , जिसमें प्रभु के मुख का तेज संक्रमित होता है ।

For Private and Personal Use Only

618. भावनिक्षेप :- प्रत्येक वस्तु में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप चार निक्षेप होते हैं । वस्तु के यथार्थ वास्तविक स्वरूप को भाव निक्षेप कहते हैं । जैसे-तीर्थंकर जब केवली अवस्था में धर्म देशना देते हों, तब भाव निक्षेप से तीर्थंकर कहलाते हैं ।

619. भावपूजा :- जिस पूजा में प्रभु के गुणों का वास्तविक कीर्तन आदि हो, उसे भावपूजा कहते हैं । चैत्यवंदन आदि भावपूजा स्वरूप हैं ।

620. भाषासमिति :- यतनापूर्वक प्रिय, हितकारी और सत्यवचन बोलना - उसे भाषा समिति कहते हैं ।

621. भुजपरिसर्प :- जो प्राणी भुजाओं के बल पर चलते हों, बैठने पर जिनके हाथ भोजन आदि करने में काम लगते हों और चलते समय पैर का काम करते हों वे भुज परिसर्प कहलाते हैं, जैसे - बंदर, गिलहरी आदि ।

622. भूमिशयन :- गद्दी - तकिए आदि का उपयोग न कर मात्र संथारा आदि बिछाकर भूमि पर सोना, उसे भूमिशयन कहते हैं ।

623. भोगभूमि :- जहाँ पुण्य का भोग ज्यादा हो, वह भूमि भोगभूमि कहलाती है । युगलिक क्षेत्र - अकर्मभूमि आदि भोगभूमि कहलाते हैं ।

624. भोगोपभोग :- जिस वस्तु का एक ही बार उपयोग किया जा सकता हो, उसे भोग कहते हैं । जैसे - आहार, जिस वस्तु का बार बार उपयोग किया जा सकता हो उसे उपयोग कहते हैं - जैसे - वस्त्र, स्त्री, अलंकार आदि ।

625. भौतिक सुख :- पाँच इन्द्रियों से संबंधित सुख को भौतिक सुख कहते हैं ।

626. भोगांतराय कर्म :- जिस कर्म के उदय से भौतिक सुखों के भोग में अंतराय पैदा होता हो, उसे भोगांतराय कर्म कहते हैं ।

627. भक्तकथा :- भोजन संबंधी बातचीत, चर्चा आदि को भक्तकथा कहते हैं ।

628. भाषावर्गणा :- पुद्गलों की आठ वर्गणाएँ हैं । आत्मा जिन पुद्गलों को ग्रहणकर उन्हें भाषा के रूप में परिणत करती है, उन पुद्गलों के समूह को भाषा वर्गणा कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

629. भगवती सूत्र :- पांचवा अंग सूत्र ! जिसमें गौतमस्वामी द्वारा भगवान महावीर को पूछे गए 36000 प्रश्नों के जवाब है ।

630. भाद्रपद :- एक महिने का नाम ।

631. भस्मक रोग :- जिस रोग में खूब भूख लगती है । खूब खाने पर भी तृप्ति का अनुभव नहीं होता है ।

22

'म'

632. मतिज्ञान :- मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से मन व इन्द्रियों की सहायता से होनेवाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं ।

633. मनः पर्यवज्ञान :- जिस आत्म प्रत्यक्ष ज्ञान से ढाई द्वीप में रहे संज्ञी प्राणियों के मनोगत भावों को जाना जा सकता है, उसे मनःपर्यवज्ञान कहते हैं ।

634. मनोगुप्ति :- आर्त व रौद्रध्यान से मन को रोकना और शुभध्यान में मन को जोड़ना, उसे मनोगुप्ति कहते हैं ।

635. मनःपर्याप्ति :- छह प्रकार की पर्याप्तियों में अंतिम पर्याप्ति मनः पर्याप्ति है । संज्ञी पंचेन्द्रियपने के नवीन जन्म को धारण करते समय मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर उसे मन रूप में परिणत करने की शक्ति को मनःपर्याप्ति कहते हैं ।

636. मनोयोग :- मन के द्वारा चिंतन आदि की प्रवृत्ति को मनोयोग कहते हैं ।

637. मनोजय :- मन पर विजय प्राप्त करना ।

638. ममत्व भाव :- बाह्य पौद्गलिक पदार्थों में अपनेपने के भाव को ममत्व भाव कहते हैं ।

639. महाविदेह :- जंबूद्वीप के मध्य में पूर्व - पश्चिम एक लाख योजन लंबा महाविदेह क्षेत्र आया हुआ है । धातकी खंड और पुष्करार्ध द्वीप में भी दो - दो महाविदेह आए हुए हैं । महाविदेह क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के चौथे आरे जैसे भाव सदैव रहते हैं । 5 महाविदेह में जघन्य से 20 और उत्कृष्ट से 160 तीर्थंकर पैदा होते हैं ।

For Private and Personal Use Only

640. माध्यस्थ्य भावना :- संसारी जीवों के प्रति विचार करने योग्य चार प्रकार की भावनाओं में चौथी भावना माध्यस्थ्य भावना है । जिनको उपदेश देने से कुछ भी लाभ होनेवाला नहीं हो, ऐसे पापी जीवों के प्रति उपेक्षा वृत्ति, उसी को माध्यस्थ्य भावना कहते हैं ।

641. मैत्री भावना :- जगत् में रहे हुए जीव मात्र के प्रति हितचिंतन की भावना को मैत्रीभावना कहते हैं ।

642. मिथ्यात्व :- जो वीतराग नहीं हो, उसे देव मानना, जो निर्ग्रंथ नहीं हो उसे गुरु मानना और जो केवली प्ररूपित न हो, उसे धर्म मानना, उसे मिथ्यात्व कहते हैं ।

जिनवचन से विपरीत वचन में श्रद्धा करना मिथ्यात्व है ।

643. माया शल्य :- आत्मा के लिए शल्यभूत तीन प्रकार के शल्यों में पहला शल्य माया शल्य है । माया अर्थात् मन में कपटवृत्ति ।

644. मिथ्यादृष्टि :- विपरीतदृष्टि !

645. मिच्छा मि दुक्कडम् :- मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ।

646. मिश्रगुणस्थानक :- आत्मविकास के जो चौदह गुणस्थानक हैं, उनमें तीसरे गुणस्थानक का नाम मिश्रगुणस्थानक है । जिनवचन के प्रति न तीव्र राग भाव हो और न ही तीव्र द्वेषभाव हो ।

यह गुणस्थानक, चौथे गुणस्थानक से गिरनेवाले को हो सकता है अथवा पतित सम्यग्दृष्टि को पहले से चढ़ते हुए भी हो सकता है ।

647. मुहूर्त :- 48 मिनिट के समय को एक मुहूर्त कहा जाता है ।

648. मोक्ष :- संपूर्ण कर्मों का क्षय होने पर आत्मा का मोक्ष होता है । मोक्ष अर्थात् राग आदि भाव कर्म और ज्ञानावरणीय आदि आठ द्रव्य कर्मों से सर्वथा छुटकारा ।

649. मोहनीय कर्म :- जिस कर्म के उदय से आत्मा भौतिक सुखों में मोहित होती है, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं । इस कर्म के उदय से आत्मा में राग - द्वेष पैदा होते हैं । आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति और चारित्र की प्राप्ति में बाधक यह मोहनीय कर्म ही है ।

650. मेरुपर्वत :- जंबूद्वीप के मध्य में आया हुआ यह पर्वत मेरुपर्वत

For Private and Personal Use Only

के नाम से प्रसिद्ध है । यह पर्वत 1 लाख योजन ऊँचा है और शुद्ध सोने से निर्मित है ।

651. मुख वस्त्रिका :- जीव-रक्षा के लिए अति उपयोगी साधन ! इसे मुहपत्ति भी कहते हैं । बोलते समय इसे मुख के पास रखने का होता है । इससे सूक्ष्म जीवों की रक्षा होती है ।

652. मिथ्या श्रुत :- मिथ्यादृष्टि का सब श्रुत मिथ्याश्रुत कहलाता है ।

653. मृत्युंजय तप :- मासक्षमण को मृत्युंजय तप भी कहते हैं ।

654. मुमुक्षु :- संसार से मुक्त होने की जिसके हृदय में इच्छा रही हुई है, उसे मुमुक्ष कहते हैं ।

655. मूलगुण :- साधु के पाँच महाव्रत और श्रावक के पाँच अणुव्रत मूलगुण कहलाते हैं ।

656. मौन एकादशी :- मगसर सुदी 11 का पर्व । इस दिन भरत-ऐरावत की भूत-भविष्य और वर्तमान की चौबीसी के 150 कल्याणक हुए हैं-इस कारण इस दिन की खूब महिमा है । अनेक आराधक इस दिन मौनपूर्वक उपवास करते हैं ।

657. मोहाधीन जीव :- जो जीव मोह के अधीन होकर प्रवृत्ति करता है, वह मोहाधीन कहलाता है ।

658. मैथुन :- पाँच मुख्य पापों में चौथा पाप मैथुन है । मैथुन अर्थात् स्त्री- पुरुष की सांसारिक भोग क्रिया ।

659. माहेन्द्र देवलोक :- 12 वैमानिक देवलोक में चौथे देवलोक का नाम माहेन्द्र देवलोक है ।

660. मिथ्यात्व गुणस्थानक :- चौदह गुणस्थानकों में पहले गुणस्थानक का नाम मिथ्यात्व गुणस्थानक है । इस गुणस्थानक में रही आत्मा मिथ्यात्व से ग्रसित होती है ।

661. मार्गानुसारिता :- जिनेश्वर भगवंत के द्वारा बताए हुए मार्ग का अनुसरण करना ।

662. मार्दवता (मृदुता) :- हृदय में माया - कपट के अभाव को मार्दवता कहते है । हृदय की एकदम सरलता ।

For Private and Personal Use Only

663. मद्य :- शराब ! जो प्रमाद का ही एक प्रकार है ।

664. मरणाशंसा :- संलेखनाव्रत स्वीकार करने के बाद शारीरिक कष्ट सहन नहीं होने पर जल्दी मौत आ जाय, ऐसी इच्छा करना, उसे मरणाशंसा कहते हैं ।

665. महाविगई :- जिनके भक्षण में भयंकर जीवहिंसा है और जो भयंकर विकार भाव को पैदा करते हैं । महाविगई चार हैं-मद्य, मांस, मधु और मक्खन !

666. मंगल कुंभ :- मंगल के लिए जिस कुंभ की स्थापना करते हैं, उसे मंगल कुंभ कहते है ।

667. मद और मदन :- मद अर्थात् अभिमान और मदन अर्थात् काम ये आत्मा के अंतरंग दुश्मन है ।

668. मधु :- शहद ! यह भी अभक्ष्य महाविगई है ।

669. महाश्रावक :- श्रावक के आचार पालन में अत्यंत दृढ़ ।

670. मानस जाप :- जो जाप सिर्फ मन में किया जाता है ।

671. मृषावाद :- झूठ बोलना ।

672. यक्ष :- तीर्थंकर परमात्मा शासन की स्थापना करते समय शासन के अधिष्ठायक के रूप में यक्ष की भी स्थापना करते हैं । 24 तीर्थंकरों के कुल 24 यक्ष हैं ।

673. यक्षिणी :- तीर्थंकर परमात्मा शासन की स्थापना के समय यक्षिणी की भी स्थापना करते हैं । 24 तीर्थंकरों की कुल 24 यक्षिणी हैं ।

674. योजन :- चार गाऊ का एक योजन होता है । द्वीप, समुद्र आदि शाश्वत पदार्थों के माप का एक योजन 3200 मील जितना होता है ।

675. यावज्जीव :- जीवन पर्यंत के लिए जो प्रतिज्ञा की जाती है, वह यावज्जीव कहलाती है ।

For Private and Personal Use Only

676. यथाप्रवृत्तिकरण :- आयुष्य को छोड़कर शेष सात कर्मों की स्थिति एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम के अंदर हो जाय, उसे यथाप्रवृत्तिकरण कहते हैं। समकित की प्राप्ति के पूर्व यथाप्रवृत्तिकरण अनिवार्य है।

677. युगलिक मनुष्य :- युगलिक क्षेत्र में युगल - (पुत्र पुत्री) के रूप में पैदा होनेवाले मनुष्य को युगलिक मनुष्य कहते हैं। इनका आयुष्य असंख्य वर्षों का होता है। भद्रिक परिणामी होने के कारण वे मरकर देवगति को ही प्राप्त करते हैं।

678. योगक्षेम :- अप्राप्त वस्तु को प्राप्त कराना, उसे योग कहते हैं और प्राप्त वस्तु का रक्षण करन उसे क्षेम कहते हैं।

679. योनि :- जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। जीवों की उत्पत्ति की कुल 84 लाख योनियाँ हैं।

680. यति :- साधु, मुनि आदि।

681. यतिधर्म :- 1) क्षमा 2) नम्रता 3) सरलता 4) निर्लोभता 5) तप 6) संयम 7) सत्य 8) शौच 9) अकिंचनता तथा 10) ब्रह्मचर्य - ये 10 यतिधर्म कहलाते हैं।

682. योगनिरोध :- 14 वें गुणस्थानक में आत्मा मन - वचन और काया के योगों का निरोध करती है। योगनिरोध के बाद आत्मा अयोगी बनती है।

683. रक्तकंबला शिला :- मेरुपर्वत पर पांडुकवन में आई हुई रक्तकंबला शिला, जिस पर ऐरावत क्षेत्र में पैदा हुए तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है।

684. रजोहरण :- साधु का मुख्य उपकरण, जिसे ओघा भी कहते हैं। आत्मा पर लगी हुई कर्म रूपी रज का हरण करने के कारण रजोहरण कहलाता है।

685. रति :- इसके अनेक अर्थ हैं–

1) कामदेव की पत्नी का नाम रति है।

2) चारित्र मोहनीय कषाय में नव नो कषाय में रति आता है।

For Private and Personal Use Only

3) पंद्रहवें पापस्थानक का नाम रति - अरति है अर्थात् अनुकूल सुख-सामग्री में होनेवाली मानसिक प्रीति को रति कहते हैं और प्रतिकूल सुख-सामग्री में होनेवाली अप्रीति को अरति कहते हैं ।

686. रम्यक् क्षेत्र :- रुक्मी और नीलवंत पर्वत के बीच आया हुआ युगलिक क्षेत्र ।

687. रत्नाकर :- इसके तल भाग में रत्न होते हैं, इसलिए समुद्र को रत्नाकर कहते हैं । तीर्थंकर की माता को जो चौदह स्वप्न आते हैं, उसमें दसवें स्वप्न में रत्नाकर समुद्र दिखाई देता है ।

688. रस गारव :- स्वादिष्ट भोजन में तीव्र आसक्ति को रस गारव कहते हैं ।

689. रात्रि भोजन :- सूर्यास्त से सूर्योदय पूर्व के भोजन को रात्रिभोजन कहते हैं । जैन साधु के लिए जिंदगीभर रात्रिभोजन का त्याग होता है । सद्गृहस्थ के लिए त्याज्य 22 प्रकार के अभक्ष्य में रात्रिभोजन को भी अभक्ष्य माना गया है । श्रावक के 7 वें भोगोपभोग विरमण व्रत में रात्रिभोजन का त्याग कहा गया है ।

690. रुचक प्रदेश :- आत्मा के असंख्य आत्मप्रदेश होते हैं । उनमें एकदम मध्यभाग में रहे हुए आठ आत्मप्रदेश रुचक प्रदेश कहलाते हैं, जिन पर कर्म का आवरण कभी नहीं आता है । लोकाकाश के मध्य, मेरुपर्वत के मध्य में आए आठ आकाशप्रदेशों को रुचक प्रदेश कहते हैं ।

691. राजलोक :- संपूर्ण लोक 14 राजलोक प्रमाण है । एक राजलोक असंख्य योजन का होता है । कोई देव एक हजार मण के गोले को ऊपर से फेंके तो 6 मास 6 दिन 6 प्रहर 6 घड़ी व 6 पल में जितने अंतर को पार करे उसे एक राजलोक कहते हैं ।

692. रहस्य अभ्याख्यान :- किसी की गुप्त बात को प्रगट करना, उसे रहस्य अभ्याख्यान कहते हैं ।

693. रुचक द्वीप :- जंबूद्वीप से चलने पर 13 वाँ द्वीप आता है । इस द्वीप पर चारों दिशाओं में चार जिन मंदिर हैं, जिनमें 124 - 124 जिन प्रतिमाएँ हैं । तीर्थंकर परमात्मा के जन्म के बाद सर्व प्रथम सूतिकर्म करनेवाली 56 दिक् कुमारिकाओं में से 40 दिक् कुमारिकाएँ इसी द्वीप में रहती हैं ।

For Private and Personal Use Only

694. रत्नत्रयी :- सम्यग्ज्ञान सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र के लिए एक संयुक्त नाम रत्नत्रयी है ।

695. राइ प्रतिक्रमण :- रात्रि संबंधी पापों के नाश के लिए प्रातः काल में जो प्रतिक्रमण किया जाता है, उसे राइ प्रतिक्रमण कहते हैं । भावपूर्वक रात्रि प्रतिक्रमण करने से रात्रि संबंधी पापों का नाश हो जाता है ।

696. रौद्रध्यान :- जिस ध्यान में आत्मा के भयंकर क्रूर परिणाम होते हैं । इस ध्यान के चार भेद हैं-1) हिंसानुबंधी 2) मृषानुबंधी 3) स्तेयानुबंधी 4) संरक्षणानुबंधी । इस ध्यान के फलस्वरूप जीव मरकर नरक में ही पैदा होता है ।

697. रूपातीत :- सर्व कर्मों से मुक्त होने पर आत्मा रूपातीत अवस्था को प्राप्त करती है । इस अवस्था में आत्मा अपने शुद्ध आत्मगुणों का अनुभव करती है ।

698. रसबंध :- किसी भी प्रकार के कर्मबंध के साथ रसबंध भी होता है । कर्म का जो तीव्र और मंद फल मिलता है, वह रसबंध को आभारी है ।

तीव्र भाव से कर्म करे तो उसका तीव्र फल मिलता है और मंद भाव से कर्म करे तो उसका मंद फल मिलता है ।

699. रोहिणी :- 27 नक्षत्रों में एक नक्षत्र का नाम इस नक्षत्र में जो तप किया जाता है, उसे रोहिणी तप कहते है ।

700. लक्षण :- किसी भी पदार्थ में रहे असाधारण गुण या चिह्न को लक्षण कहते हैं । यह लक्षण सिर्फ लक्ष्य में ही घटता है, लक्ष्य को छोड़कर अन्य किसी में वह लक्षण घटता नहीं है ।

701. लक्ष्य :- जिसको उद्देशित कर कार्य किया जाता है, उसे लक्ष्य कहते हैं ।

702. लघिमा लब्धि :- योग साधना के फलस्वरूप आत्मा में पैदा होनेवाली 8 प्रकार की लब्धियों में एक लब्धि जिसके फलस्वरूप आत्मा अपने शरीर को छोटे से छोटा बना सकती है ।

For Private and Personal Use Only

703. लब्धि अपर्याप्त :- अपर्याप्त नाम कर्म के उदय वाला जीव जब नवीन जन्म धारण करता है, तब स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूरी करने के पहले ही मर जाता है ।

704. लवण समुद्र :- मध्यलोक में जंबूद्वीप के चारों ओर वलयाकार में आया हुआ सबसे पहला समुद्र, जिसका व्यास 2 लाख योजन प्रमाण है, जिसका पानी नमक की तरह खारा है ।

705. लांछन :- तीर्थंकर परमात्मा की दाहिनी जंघा पर आया हुआ एक चिह्न ! जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा की पहिचान भी लांछन के आधार पर ही होती है । यह लांछन प्रतिमा की बैठक के नीचे के भाग में होता है । लांछन देखकर यह पता चलता है कि ये कौन से भगवान हैं !

706. लाभांतराय :- व्यापार आदि में लाभ होने की संभावना हो, फिर भी जिस कर्म के उदय के कारण लाभ नहीं होता है, उसे लाभांतराय कर्म कहते हैं ।

707. लव सत्तम :- मोक्ष में जाने के लिए सर्व कर्मक्षय की जो साधना की जाती है, उस साधना में 7 लव जितना आयुष्य कम पड़ जाने के कारण जो आत्मा मरकर अनुत्तर देव विमान में पैदा होती है । 7 लव जितना आयुष्य अधिक होता तो वह आत्मा सर्व कर्मों का क्षय किए बिना नहीं रहती ऐसी आत्मा को लव सत्तम कहते हैं ।

708. लेश्या :- लेश्या दो प्रकार की होती है - द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या ।

द्रव्य लेश्या वर्ण स्वरूप है ।

भाव लेश्या, कृष्ण आदि द्रव्यों के योग से कषाय से रंजित बने अध्यवसाय स्वरूप है ।

लेश्याएँ छह प्रकार की हैं- कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल । इनमें पहली तीन अशुभ लेश्या रूप हैं और शेष तीन शुभलेश्या रूप हैं ।

709. लोक :- धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्य जिसमें रहे हुए हैं, उसे लोक कहते हैं । इस लोक के तीन विभाग हैं- ऊर्ध्व लोक, अधोलोक और तिर्च्छालोक । अधोलोक और ऊर्ध्व लोक कुछ न्यून सात राजलोक प्रमाण हैं

For Private and Personal Use Only

जब कि मध्यलोक ऊँचाई में 1800 योजन और चौड़ाई में एक राजलोक प्रमाण है ।

710. लोकाकाश :- चौदह राजलोक में रहे हुए आकाश को लोकाकाश कहते हैं ।

711. लोकस्वरूप भावना :- आत्म चिंतन के लिए अति उपयोगी जो 12 भावनाएँ हैं । उनमें 10 वीं भावना लोकस्वरूप भावना है । इस भावना में चौदह राजलोक के स्वरूप के बारे में चिंतन किया जाता है ।

712. लोकपाल :- चार दिशाओं के अधिपति चार लोकपाल कहलाते हैं । उनके नाम सोम, यम, वरुण और वैश्रवण है ।

713. लोकसंज्ञा :- लोकप्रवाह जिस ओर हो, उस प्रकार की प्रवृत्ति करना !

714. लोकांतिक देव :- 5 वें ब्रह्म देवलोक के पास आठ कृष्ण राजि के बीच नौ लोकांतिक देव आए हुए हैं । तारक तीर्थंकर परमात्मा की भागवती दीक्षा के ठीक एक वर्ष पहले नौ लोकांतिक देव आकर प्रभु से तीर्थ की स्थापना के लिए प्रार्थना करते हैं । ये सभी देव एकावतारी होते हैं अर्थात् एक भव करके मोक्ष में जानेवाले होते हैं ।

715. लोच :- दाढ़ी-मूछ और मस्तक के बालों को जड़मूल से उखाड़कर बाहर निकालना उसे लोच कहते हैं । जैन साधु - साध्वी अपने मस्तक व दाढी-मूछ का लोच करते हैं । तारक तीर्थंकर परमात्मा अपनी पाँच मुट्ठी द्वारा सभी बालों का लोच करते हैं ।

716. लोभ संज्ञा :- अधिक-से-अधिक धन पाने की लालसा को लोभ संज्ञा कहते हैं । लोभ संज्ञावाले जीव को चाहे जितना धन मिल जाय, फिर भी उसे संतोष नहीं होता है । जो भी मिला हो, जितना भी मिला हो, वह उसे कम ही लगता है ।

717. लोमाहार :- शरीर की रोमराजि के द्वारा जो आहार लिया जाता है, वह लोमाहार कहलाता है ।

718. लौकिक धर्म :- संसार के भौतिक सुखों की अभिलाषा से जो धर्म किया जाता है, वह लौकिक धर्म कहलाता है, अथवा लोक व्यवहार में प्रसिद्ध धर्म को लौकिक धर्म कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

719. लोकाग्र भाग :- चौदह राजलोक रूप विश्व का सबसे ऊपर रहा हुआ अग्रभाग । इस भाग में सिद्धों का वास है ।

720. लज्जालुता :- सद्धर्म की प्राप्ति की योग्यता स्वरूप जो 21 गुण बतलाए हैं, उसमें लज्जा भी एक विशिष्ट गुण है । लज्जालु व्यक्ति गलत काम करते हुए घबराता है । निर्लज्ज व्यक्ति को पाप करने में कुछ भी डर नहीं लगता है ।

721. लांतक देवलोक :- बारह वैमानिक देवलोक में छठे देवलोक का नाम लांतक देवलोक है ।

722. वक्र गति :- जीव एक गति से दूसरी गति में जाता है, तब उसकी दो गतियाँ होती हैं- ऋजुगति और वक्रगति !

मरने के बाद उत्पत्ति का स्थान समश्रेणि में हो तो आत्मा ऋजुगति (सरलगति) से प्रयाण करती है और उत्पत्ति का स्थान विषमश्रेणि में हो तो आत्मा वक्रगति से प्रयाण करती है ।

723. वक्र-जड़ :- भरत - ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल में हुए 24 तीर्थंकरों के शासन में पैदा होनेवाले जीव एक समान स्वभाव वाले नहीं होते हैं ।

पहले ऋषभदेव प्रभु के शासन के जीव ऋजु और जड़ थे ।

अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ तक बाईस तीर्थंकरों के शासन के जीव ऋजु और प्राज्ञ थे ।

महावीर प्रभु के शासन में पैदा हुए जीव वक्र और जड़ हैं ।

जड़ता के कारण सत्यमार्ग को समझना कठिन है और वक्रता के कारण सत्यमार्ग को समझने पर भी उसका पालन कठिन है ।

724. वचन क्षमा :- 'क्षमा रखना' -यह तीर्थंकरों की आज्ञा है, ऐसा मानकर क्षमा भाव को धारण करना, उसे वचन क्षमा कहते हैं ।

725. वचनातिशय :- तीर्थंकर परमात्मा की वाणी, वाणी के 35 गुणों से युक्त होती है । तारक परमात्मा अर्ध मागधी भाषा में देशना देते हैं, परंतु

For Private and Personal Use Only

सभी श्रोताओं को अपनी अपनी भाषा में समझ में आ जाता है । तीर्थंकर परमात्मा के जो चार अतिशय कहे गए हैं, उनमें एक वचनातिशय भी है ।

726. वज्रऋषभ नाराच संघयण :- संघयण अर्थात् हड्डियों की रचना । इस रचना में हड्डियों का मर्कटबंध, पट्टा और कीली तीनों होते हैं । मोक्ष में जाने के लिए वज्रऋषभनाराच संघयण जरूरी है ।

727. वंदन आवश्यक :- साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ के लिए अवश्य करने योग्य जो सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, गुरुवंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और पच्चक्खाण आदि छह आवश्यक हैं, उसमें गुरुवंदन यह तीसरा आवश्यक है । मोक्षमार्गदर्शक उपकारी गुरु को वंदन करना, यह भी अवश्य कर्तव्य है ।

728. वार्षिक दान :- तारक तीर्थंकर परमात्मा दीक्षा अंगीकार करने के पहले एक वर्ष तक नियमित दान देते हैं । एक वर्ष तक दान देने के कारण उसे वार्षिक दान कहते हैं । तारक परमात्मा एक वर्ष दरम्यान 388 करोड़ 80 लाख सुवर्ण मुद्राओं का दान देते हैं । इस दान द्वारा परमात्मा जगत् के द्रव्य दारिद्र्य का नाश करते हैं ।

वर्तमान समय में दीक्षा लेनेवाला वार्षिक दान के अनुकरण स्वरूप वर्षीदान देता है ।

729. वर्धमान तप :- जो तप क्रमशः बढ़ता जाता है, जिसमें पहले एक आयंबिल एक उपवास, फिर दो आयंबिल एक उपवास, इस प्रकार क्रमशः 100 आयंबिल और एक उपवास किया जाता है । इस तप में कुल 5050 आयंबिल और 100 उपवास होते हैं ।

730. वर्धमान स्वामी :- इस अवसर्पिणी काल में हुए 24 वें तीर्थंकर महावीर स्वामी का ही दूसरा नाम वर्धमान स्वामी है । प्रभु के जन्म के बाद हर तरह से धन - धान्य व परिवार में वृद्धि होने से उनका यथार्थनाम वर्धमान रखा जाता है ।

731. वर्षधर पर्वत :- भरत आदि 7 क्षेत्रों की सीमा को निर्धारित करनेवाले ये पर्वत वर्षधर पर्वत कहलाते हैं । इनके नाम हैं- हिमवंत, महाहिमवंत, निषध, नीलवंत, रुक्मि और शिखरी !

732. वक्षस्कार पर्वत :- महाविदेह क्षेत्र में जो 32 विजय हैं, उन 32

For Private and Personal Use Only

विजयों का विभाजन करनेवाले वक्षस्कार पर्वत और नदियाँ हैं । जंबूद्वीप के महाविदेह में 16 वक्षस्कार पर्वत हैं ।

733. वायुकाय :- पवन के जीवों को वायुकाय कहते हैं ।

734. वाचना :- स्वाध्याय के 5 प्रकारों में सबसे पहला प्रकार वाचना है । वाचना अर्थात् गुरु के पास से विधिपूर्वक सूत्र ग्रहण करना ।

735. वामन संस्थान :- छह प्रकार के संस्थानों में 5 वें संस्थान का नाम वामन संस्थान है । इस संस्थान में हाथ, पैर, मस्तक और पेट ये चार अंग प्रमाणशः होते हैं, शेष अंग अव्यवस्थित होते हैं ।

736. वालुका प्रभा :- अधोलोक में जो सात नरक हैं उनमें तीसरी नरक पृथ्वी का नाम वालुका प्रभा है ।

737. वासुदेव :- एक अवसर्पिणी काल में भरत-ऐरावत क्षेत्र में 9-9 वासुदेव होते हैं । ये वासुदेव तीन खंड के अधिपति होते हैं, इन्हें अर्द्धचक्री भी कहते हैं । प्रतिवासुदेव की मौत वासुदेव के हाथों से ही होती है ।

यद्यपि वे उत्तम पुरुष होते हैं, परंतु पूर्व भव में नियाणा करके आये हुए होने के कारण वे दीक्षा अंगीकार नहीं करते हैं और मरकर अवश्य नरक में जाते हैं ।

738. विकलेन्द्रिय :- बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों का संयुक्त नाम विकलेन्द्रिय है । ये जीव मन रहित होते हैं ।

739. विगई :- जिसको खाने से मन में विकारभाव पैदा होता है, उसे विगई कहते हैं । यह दो प्रकार की है-भक्ष्य विगई और अभक्ष्य विगई ।

दूध, दही, घी, तैल, गुड़ और कड़ाह विगई, भक्ष्य विगई कहलाती है ।

मद्य, मांस, मधु और मक्खन ये चार अभक्ष्य विगई कहलाती हैं ।

740. विद्याचारण मुनि :- विद्या के बल से आकाश में उड़नेवाले मुनि विद्याचारण मुनि कहलाते हैं ।

741. विद्याप्रवाद पूर्व :- चौदह पूर्वों में से एक पूर्व का नाम विद्याप्रवाद पूर्व है । इस पूर्व में अनेक प्रकार की विद्याओं का निर्देश किया गया है ।

742. विनय :- विनय अर्थात् नम्रता । गुणवान व ज्येष्ठ और रत्नाधिक

For Private and Personal Use Only

आदि के प्रति नम्रतापूर्वक व्यवहार को विनय कहते हैं । छह प्रकार के अभ्यंतर तप में विनय दूसरे नंबर का तप है ।

743. विपाक विचय :- धर्म ध्यान के जो चार प्रकार हैं, उनमें एक विपाक विचय है । इस ध्यान में-पूर्व में बँधे हुए कर्म का फल अत्यंत ही भयंकर होता है - इस प्रकार का चिंतन किया जाता है ।

744. विपाक क्षमा :- क्षमा के जो पाँच भेद हैं, उनमें एक विपाक क्षमा है । क्रोध का फल-विपाक अत्यंत भयंकर है । 'मैं क्रोध करूंगा तो मुझे नरक आदि की पीड़ा सहन करनी पड़ेगी' इस प्रकार क्रोध के विपाक परिणाम को जानकर जो क्षमा भाव धारण करता है, उसे विपाक क्षमा कहते हैं ।

745. विभंगज्ञान :- मिथ्यादृष्टि आत्माओं के विपरीत हुए अवधिज्ञान को ही विभंगज्ञान कहते हैं । देवता व नारक जीवों को उस - उस भव के कारण ही तीन ज्ञान होते हैं । यदि वे सम्यग् दृष्टि हैं तो उन्हें तीसरा अवधिज्ञान होता है और यदि वे मिथ्यादृष्टि हैं तो उन्हें विभंग ज्ञान होता है ।

746. विरति :- पाप के त्याग के पच्चक्खाण को विरति कहते हैं ।

747. विरतिधर :- जो विरति का पालन करता है, उसे विरतिधर कहते हैं ।

748. विरमण :- पापों से रुकना उसे विरमण कहते हैं ।

749. विरहवेदना :- किसी भी प्रिय व्यक्ति या वस्तु के वियोग के पीछे होनेवाली वेदना को विरह वेदना कहते हैं ।

750. विराधना :- प्रभु की आज्ञा से विपरीत प्रवृत्ति को विराधना कहते हैं । प्रभु आज्ञा की आराधना से आत्मा का विकास होता है और प्रभु की आज्ञा की विराधना से आत्मा का पतन होता है ।

751. विवेकी :- जिसमें हेय - उपादेय का विवेक हो, उसे विवेकी कहा जाता है ।

752. विषय प्रतिभास ज्ञान :- ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से जहाँ पदार्थ का बोध होता है परंतु दर्शन - मोहनीय का क्षयोपशम नहीं होने से जहाँ तत्त्वरुचि पैदा नहीं हुई हो, उस ज्ञान को विषय प्रतिभास ज्ञान कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

753. विषयाभिलाषा :- पाँच इन्द्रियों के विषयों के भोग की अभिलाषा को विषयाभिलाषा कहते हैं ।

754. वीतराग दशा :- आत्मा में से राग - द्वेष और मोह का सर्वथा नाश होना । अनुकूल वस्तु पर न राग होना और न ही प्रतिकूल वस्तु पर द्वेष होना ।

755. विहायोगति :- जिस कर्म के उदय से भूमि का आश्रय लिये बिना भी जीवों का आकाश में गमन होता है वह विहायोगति नामकर्म है । यह दो प्रकार का है–शुभ और अशुभ ! हाथी, बैल, हंस आदि की शुभ गति में कारण शुभ विहायोगति नामकर्म है और गधा, ऊँट आदि की अशुभ गति में कारण अशुभ विहायोगति नामकर्म होता है ।

756. वीर्य :- शक्ति, बल, पुरुषत्व, शुक्र आदि

757. वीर्याचार :- पुण्योदय से प्राप्त हुई शक्ति का धर्मकार्य में उपयोग करना-उसे वीर्याचार कहते हैं । ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार और तपाचार के पालन में अपनी शक्ति को लगाना, उसे वीर्याचार कहते हैं ।

758. वृत्तिसंक्षेप :- छह प्रकार के बाह्यतप में तीसरे नंबर का तप ! अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखना, उसे वृत्तिसंक्षेप तप कहते हैं । इस तप द्वारा खाने - पीने की वस्तुओं की संख्या मर्यादित की जाती है ।

759. वैक्रिय शरीर :- वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ शरीर वैक्रिय शरीर कहलाता है । देवता और नारक जीवों का शरीर वैक्रियवर्गणा के पुद्गलों से बना होता है । देवताओं के वैक्रिय शरीर में हड्डी, मांस, चर्बी, खून, मल-मूत्र आदि किसी भी प्रकार का अशुचिमय पदार्थ नहीं होता है ।

760. वैमानिक देव :- विमानों में रहनेवाले देवता वैमानिक कहलाते हैं ।

761. वैयावच्च :- आचार्य, उपाध्याय आदि की सेवा-भक्ति करना, उसे वैयावच्च कहते हैं । यह भी तीसरे नंबर का अभ्यंतर तप है ।

762. वोसिरामि :- मैं त्याग करता हूँ !

763. व्यंतर देव :- देवों के चार प्रकार हैं- भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक !

For Private and Personal Use Only

764. व्यंजनावग्रह :- जहाँ इन्द्रिय और उसके विषय का मात्र संयोग हुआ हो, जहाँ पदार्थ का स्पष्ट बोध नहीं होता है, बल्कि अव्यक्त बोध होता है ।

765. व्यवहारराशि :- जो जीव अनादिकालीन निगोद में से एक बार भी बाहर निकलकर बादर निगोद आदि में पैदा हुए हों, वे जीव व्यवहार राशि के जीव कहलाते हैं ।

766. व्याप्ति :- अविनाभाव संबंध को व्याप्ति कहते हैं । जैसे - जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ-वहाँ अग्नि है ।

767. व्यवहार नय :- सात नयों में एक नय का नाम व्यवहार नय है । यह नय वस्तु के एक अंश को ग्रहण करता है ।

यह नय वस्तुओं के विविध प्रकार के पृथक्करण को भी स्वीकार करता है । जैसे - जीव के दो भेद (त्रस-स्थावर), जीव के तीन भेद (स्त्री, पुरुष और नपुंसक) जीव के चार भेद (देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच) ।

768. वीर्यांतराय :- अंतराय कर्म के जो 5 भेद हैं, उनमें एक भेद वीर्यांतराय है । जिस कर्म के उदय से शक्ति होते हुए भी जीव अपनी शक्ति का उपयोग नहीं कर पाता है ।

769. विजय :- विजय शब्द के अनेक अर्थ हैं-

1) शत्रु को पराजित करना ।

2) महाविदेह क्षेत्र के जो 32 विभाग किए हैं, उन प्रत्येक विभाग को भी विजय कहते हैं ।

3) पाँच अनुत्तर विभाग में पहले विभाग का नाम विजय है ।

4) जंबूद्वीप के पूर्व द्वार का नाम भी विजय है ।

770. विद्याधर :- वैताढ्य पर्वत पर रहनेवाले मनुष्य, जिनके पास अनेक प्रकार की विद्याएँ होती हैं, इस कारण वे विद्याधर कहलाते हैं ।

771. वामन संस्थान :- मनुष्य शरीर की बाह्य रचना को संस्थान कहते हैं । इसके छह भेद हैं । पाँचवें संस्थान का नाम वामन संस्थान है । इस संस्थान में शरीर के ऊपर के अंग प्रमाणसर होते हैं, परंतु नीचे के अंग बेडौल होते हैं ।

772. वज्रधर :- वज्र रुप हथियार को धारण करनेवाले-इन्द्र !

For Private and Personal Use Only

773. शक्यप्रयत्न :- आराधना आदि के लिए अपनी शक्ति के अनुसार जो प्रयत्न किया जाता है, उसे शक्यप्रयत्न कहते हैं ।

774. शतक :- जिस सूत्र में 100 गाथाएँ होती हैं, उसे शतक कहते हैं । जैसे-वैराग्यशतक, समाधिशतक, योगशतक, इन्द्रियपराजयशतक आदि ।

775. शताब्दी महोत्सव :- जिन मंदिर आदि की प्रतिष्ठा के 100 वर्ष पूर्ण होने के बाद जो महोत्सव होता है, उसे शताब्दी महोत्सव कहते हैं ।

776. शतावधानी :- एक साथ 100 बातों पर अपना ध्यान केन्द्रितकर उन्हें याद रख सके और उसी क्रम से दोहरा दे उसे शतावधानी कहते हैं ।

777. शब्दवेधी :- सिर्फ शब्द सुनकर बाण द्वारा निशान ताकनेवाला शब्दवेधी कहलाता है ।

778. शय्यातर :- जिस मकान में साधु - साध्वी ने रात्रि में विश्राम किया हो, उस मकान का मालिक शय्यातर कहलाता है ।

शय्या अर्थात् बसती के दान द्वारा संसार सागर से पार उतरनेवाला शय्यातर कहलाता है ।

779. शय्या परिषह जय :- साधु-साध्वी को विहार दरम्यान ठहरने के लिए ऊँची-नीची जमीन प्राप्त हो, ठंडी - गर्मीवाली जगह हो, आवास स्थान कष्टदायी हो, तो भी मन में आर्त - रौद्र ध्यान नहीं करना, उसे शय्या परिषह जय कहते हैं ।

780. शरीर पर्याप्ति :- जिस शक्ति विशेष से जीव पुद्गलों को ग्रहणकर उन्हें शरीर के रूप में बनाता है, उस शक्ति विशेष को शरीर पर्याप्ति कहते हैं ।

781. शलाका पुरुष :- 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव तथा 9 बलदेव इन 63 आदि उत्तम पुरुषों को शलाका पुरुष कहते हैं ।

782. शाश्वती प्रतिमा :- जो प्रतिमाएँ अनादिकाल से हैं और भविष्य में भी अनंतकाल तक रहनेवाली हों, वे शाश्वती प्रतिमाएँ कहलाती हैं ।

For Private and Personal Use Only

783. शाश्वत चैत्य :- जो जिनमंदिर सदाकाल विद्यमान रहनेवाले हों, वे शाश्वत चैत्य कहलाते हैं ।

784. शास्त्र :- सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांत, जो शब्द रूप में लिखे गए हों, वे शास्त्र कहलाते हैं ।

785. शिबिका :- पालकी, तारक तीर्थंकर परमात्मा दीक्षा अंगीकार करने के लिए जब अपने महल से प्रयाण करते हैं, तब वे शिविका में बैठे होते हैं, जिसे देवता और मनुष्य वहन करते हैं ।

786. शिलान्यास :- मकान या मंदिर की खनन विधि के बाद जो सर्वप्रथम विधिपूर्वक पाषाण रखा जाता है, उस विधि को शिलान्यास कहते हैं ।

787. शीतलेश्या :- जलती हुई वस्तु को शांत कर देनेवाली एक प्रकार की लब्धि को शीतलेश्या कहते हैं ।

788. शुक्ल पाक्षिक :- जिस आत्मा का संसार परिभ्रमण अर्ध पुद्गल परावर्तकाल से अधिक न बचा हो, उसे शुक्ल पाक्षिक कहते हैं ।

789. शुश्रूषा :- धर्मश्रवण की तीव्र उत्कंठा को शुश्रूषा कहते हैं ।

790. शैलेशीकरण :- शैलेश = मेरुपर्वत । जिस अवस्था में आत्मा मेरु की तरह निष्प्रकंप होती है । सयोगी केवली गुणस्थानक में रही हुई आत्मा अपने योगों का निरोध कर जब अयोगी गुणस्थानक को प्राप्त करती है, तब आत्मा शैलेशीकरण करती है ।

791. शैक्षक :- थोड़े समय पहले ही जिसने दीक्षा अंगीकार की हो, उसे शैक्षक कहते हैं । शैक्षक अर्थात् नूतन दीक्षित ।

792. श्रुतकेवली :- संपूर्ण चौदहपूर्व का ज्ञान जिसे हो, वे श्रुतकेवली कहलाते हैं । श्रुतकेवली भी पदार्थों का निरूपण केवलज्ञानी की तरह कर सकते हैं अर्थात् एक ओर केवली देशना देते हों और दूसरी ओर चौदहपूर्वी देशना देते हों तो उनकी देशना में कुछ भी फर्क नहीं होता है ।

793. श्रोत्रेन्द्रिय :- कान ।

794. श्वेतांबर :- श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले श्वेतांबर कहलाते हैं ।

795. शुक्ल लेश्या :- मन के अत्यंत ही निर्मल परिणाम । किसी को लेश भी पीड़ा नहीं देने की मनोवृत्ति ।

For Private and Personal Use Only

28

'ष'

796. षट्काय :- पृथ्वीकाय, अप् काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय - इन छह कायों के लिए संयुक्त शब्द 'षट्काय' है ।

797. षड्स्थानक :- जैन दर्शन में आत्मा के छह स्थान हैं- 1) आत्मा है 2) आत्मा नित्य है 3) आत्मा कर्म की कर्ता है 4) आत्मा कर्म की भोक्ता है । 5) आत्मा का मोक्ष है और 6) मोक्ष का उपाय है ।

29

'स'

798. संकेत पच्चक्खाण :- किसी संकेत को निश्चयकर जो पच्चक्खाण किया जाता है, उसे संकेत पच्चक्खाण कहते हैं । जैसे - नवकारसी, मुट्ठसी, गंठसी आदि ।

799. संक्लिष्ट परिणाम :- कषाय या राग - द्वेष युक्त मन के परिणाम अध्यवसायों को संक्लिष्ट परिणाम कहते हैं ।

800. संघ :- साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध समूह को संघ कहते हैं ।

801. संघयण नामकर्म :- जिस नाम कर्म के उदय से जीव को वज्रऋषभनाराच आदि संघयण की प्राप्ति होती है, उसे संघयण नाम कर्म कहते हैं ।

802. संपदा :- सूत्र बोलते समय जहाँ बीच-बीच में थोड़ा रुकने का होता है, उन रुकने के स्थानों को संपदा कहते हैं ।

803. सूक्ष्म संपराय :- संपराय अर्थात् कषाय ! आत्मविकास के जो चौदह गुणस्थानक हैं, उनमें 10 वें गुणस्थानक का नाम सूक्ष्म संपराय है । जहाँ अत्यप्रमाण में कषाय विद्यमान होने से उस गुणस्थानक को सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक कहते हैं ।

804. संमूर्च्छिम जीव :- गर्भज और उपपात्त जन्मवालों के अतिरिक्त जीवों का समूर्च्छन जन्म होता है । मनुष्यों व तिर्यंचों की उत्पत्ति गर्भज और सम्मूर्च्छन के भेद से दो प्रकार की है । एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय,

For Private and Personal Use Only

चतुरिन्द्रिय कोई पंचेन्द्रिय तिर्यंच और समुर्च्छिम मनुष्य इनके सम्मूर्च्छन ही जन्म होता है ।

805. संरक्षणानुबंधी :- स्त्री व धन आदि के संरक्षण हेतु तीव्र ममता के परिणाम !रौद्रध्यान का यह चौथा भेद है ।

806. संलीनता :- बाह्यतप के छह भेदों में छठा भेद संलीनता है । अपने अंगोपांगों व इन्द्रियों को संकुचित कर रखना अर्थात् नियंत्रण में रखना ।

807. संवर :- आत्मा में आते हुए कर्मों को रोकना । समिति, गुप्ति, परिषह, यतिधर्म, भावना और चारित्र आदि 57 भेद हैं । संवरतत्त्व आस्त्रव का विरोधी तत्त्व है ।

808. संवत्सरी प्रतिक्रमण :- वर्ष में एक बार किये जानेवाला प्रतिक्रमण । यह प्रतिक्रमण पर्युषण के अंतिम दिन किया जाता है ।

809. संवेग :- मोक्षप्राप्ति की तीव्र अभिलाषा को संवेग कहते हैं ।

810. संसार :- जहाँ आत्मा जन्म - मरण की पीड़ा का अनुभव करती है । एक गति में से दूसरी गति में जीवात्मा को भटकना पड़ता है ।

811. संस्थान विचय धर्मध्यान :- जिस ध्यान में चौदह राजलोक रूप विश्व में रहे छह द्रव्यों का चिंतन किया जाता है, वह संस्थान विचय नाम का धर्म ध्यान है ।

812. संज्ञा :- अनादि काल से आत्मा में पड़े हुए संस्कार । ये संज्ञाएँ अनेक प्रकार की हैं ।

813. चार संज्ञाएँ :- आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा ।

814. दस प्रकार की संज्ञाएं :- आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध मान, माया, लोभ, लोकसंज्ञा और ओघसंज्ञा ।

तीन प्रकार की संज्ञाएं- 1) दीर्घकालिकी 2) हेतुवादोपदेशिकी 3) दृष्टिवादोपदेशिकी ।

815. सकृत्बंधक :- जो मोहनीय कर्म की 70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति का एक बार बंध करनेवाली हो, वह आत्मा सकृत्बंधक कहलाती है ।

816. सज्झाय :- स्वाध्याय ।

For Private and Personal Use Only

817. सचित्त परिहारी :- तीर्थयात्रा के लिए जिन छह नियमों का पालन करने का होता है, उनमें एक सचित्तपरिहारी है अर्थात् सचित्त वस्तु के उपभोग का त्याग करना ।

818. सदाचारी :- श्रेष्ठ आचार धर्मों का पालन करनेवाला सदाचारी कहलाता है ।

819. सनत् कुमार देवलोक :- तीसरे वैमानिक देवलोक का नाम सनत् कुमार है ।

820. सत्तागत कर्म :- जो कर्म अभी तक उदय में नहीं आए हों, वे कर्म सत्तागतकर्म कहलाते हैं ।

821. सद्गति :- देव और मनुष्य गति को सद्गति तथा तिर्यंच और नरक गति को दुर्गति कहते हैं ।

822. सपर्यवसित श्रुत :- जिस श्रुतज्ञान का अंत आता हो, उसे सपर्यवसित श्रुत कहते हैं । भरत व ऐरावत क्षेत्र की दृष्टि से अवसर्पिणी काल के पाँचवें आरे के अंत में श्रुत का अंत आता है ।

823. सप्तभंगी :- किसी भी वस्तु को स्पष्टरूप से समझने के लिए उसके सात विकल्प हो सकते हैं-जैसे

1) स्यात् अस्ति 2) स्यात् नास्ति 3) स्यात् अस्ति नास्ति
4) अवक्तव्य 5) स्याद् अस्ति अवक्तव्य 6) स्याद् नास्ति अवक्तव्य
7) स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य ।

824. समचतुरस्र संस्थान :- जिसके चारों कोने एक समान हों-

1) बाएँ घुटने से दायाँ स्कंध 2) दाएँ घुटने से बायाँ स्कंध
3) कपाल के मध्यभाग से पलाठी के मध्य भाग तक
4) पलाठी का अंतर ।

ये चारों माप एक समान हों, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं ।

825. समभिरूढ नय :- जिस शब्द का धातु - प्रत्यय से जैसा अर्थ होता हो, उसी के अनुसार शब्दप्रयोग स्वीकार करनेवाला ।

जैसे-**नृन् पालयति इति नृपः** मनुष्यों का पालन करे वह राजा ।

826. समभूतला पृथ्वी :- चौदह राजलोक के एकदम मध्य का भाग, जिस भूमि से ऊपर-नीचे 7-7 राजलोक होते हैं तथा पूर्व आदि चारों दिशाओं में आधा-आधा राजलोक होता है ।

For Private and Personal Use Only

सभी के बीच के 8 आकाश प्रदेशों को समभूतला पृथ्वी कहते हैं ।

827. समय :- समय शब्द के अनेक अर्थ होते हैं-

1) काल Time 2) काल के अविभाज्य अंश को 'समय' कहते हैं ।

3) आगम शास्त्र 4) अवसर

828. समयक्षेत्र :- ढाई द्वीप ! जहाँ मनुष्य का जन्म - मरण होता है । सूर्य-चंद्र की गति से जहाँ रात - दिन होते हैं, ऐसे ढाई द्वीप के क्षेत्र को समयक्षेत्र कहते हैं ।

829. समाधिमरण :- मृत्यु समय में किसी भी प्रकार का आर्त्त-रौद्र ध्यान न हो, समभाव में रहकर देह का त्याग करे, उसे समाधिमरण कहते हैं ।

830. समालोचना :- किये हुए पापों की गुरु समक्ष अच्छी तरह से आलोचना करना, कहना उसे समालोचना कहते हैं ।

831. समिति :- आत्महित के लिए सम्यग् प्रकार से प्रवृत्ति करना ! साधु - साध्वी के लिए अवश्य पालन करने योग्य 5 समिति हैं- 1) ईर्यासमिति 2) भाषासमिति 3) एषणा समिति 4) आदान भंडमत्त निक्षेपणा समिति 5) पारिष्ठापनिका समिति ।

832. सयोगी केवली :- तेरहवें गुणस्थानक में रहे हुए - मन, वचन और काया के योगवाले केवली भगवंत को सयोगी केवली कहते हैं ।

833. सर्वविरति चारित्र :- हिंसा, झूठ आदि सभी प्रकार के पापों के मन, वचन और काया से सर्वथा त्याग को सर्वविरति चारित्र कहते हैं ।

834. सांशयिक मिथ्यात्व :- मिथ्यात्व के 5 प्रकारों में एक सांशयिक मिथ्यात्व है । जिन वचन में शंका - संशय करना - उसे सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

835. सागरोपम :- 10 कोटाकोटी पल्योपम को एक सागरोपम कहते हैं ।

836. साढपोरिसी :- सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय में चार प्रहर होते हैं । सूर्योदय से डेढ़ प्रहर बीतने पर साढ़पोरिसी पच्चक्खाण आता है ।

837. समुद्घात :- सत्ता में रहे कर्मों को जल्दी से नष्ट करने के लिए जो प्रक्रिया की जाती है, उसे समुद्घात कहते हैं इसके 7 प्रकार हैं—

1. वेदना समुद्घात 2. कषाय समुद्घात 3. मरण समुद्घात
4. वैक्रिय समुद्घात 5. तैजस समुद्घात 6. आहारक समुद्घात
7. केवली समुद्घात

For Private and Personal Use Only

838. शाता गारव :- शारीरिक शाता में अत्यंत आसक्ति । सुखशीलपना, शरीर को थोड़ी भी तकलीफ न पड़े, ऐसी मनोवृत्ति ।

839. सादि-अनंत :- जिसका प्रारंभ है लेकिन जिसका अंत नहीं है, उसे सादि अनंत कहते हैं-जैसे क्षायिक सम्यक्त्व, एक जीव की अपेक्षा से मोक्ष ।

840. साधारण द्रव्य :- जिस द्रव्य (धन) का उपयोग सभी सात क्षेत्रों में हो सकता हो, वह साधारण द्रव्य कहलाता हैं ।

841. साधारण वनस्पतिकाय :- जिसके एक शरीर में अनंत जीव हों उस वनस्पति को साधारण वनस्पतिकाय कहते है ।

842. सास्वादन :- आत्मविकास के चौदह गुणस्थानकों में दूसरे गुणस्थानक का नाम 'सास्वादन है ।'

अनंतानुबंधी कषाय के उदय के कारण सम्यक्त्व का वमन करते समय जो क्षणिक आस्वाद होता है, वह सास्वादन कहलाता है । इस गुणस्थानक का काल छह आवलिका मात्र है ।

843. सिद्धचक्र :- अरिहंत आदि नवपदों से बने हुए चक्र को सिद्धचक्र कहते हैं ।

844. सिद्धशिला :- चौदह राजलोक के अग्र भाग पर आई हुई शिला, जिस पर सिद्धों का वास है । जो 45 लाख योजन लंबी-चौड़ी है तो बीच में आठ योजन मोटी और क्रमशः घटती हुई किनारे पर मक्खी की पाँख जितनी पतली है । जो स्फटिक रत्नमय है, जिसका दूसरा नाम ईषद्प्राग्भारा है ।

845. सिद्धितप :- सिद्धि पद को देनेवाला एक प्रकार का तप, जिस तप में क्रमशः एक से आठ उपवास तक चढ़ने का होता है ।

846. सुकृतानुमोदना :- जगत् में हो रहे या हुए सुकृतों की अनुमोदना करना उसे सुकृतानुमोदना कहते हैं ।

847. शुक्ल पक्ष :- जिस पक्ष में प्रतिदिन चंद्रमा की कलाओं की वृद्धि होती है, उसे शुक्ल पक्ष कहते हैं ।

848. सुर पुष्पवृष्टि :- श्री अरिहंत परमात्मा के जो आठ प्रातिहार्य होते हैं, उनमें एक सुरपुष्पवृष्टि भी है । प्रभु के समवसरण में देवतागण घुटनों तक पंचवर्णी सुगंधित पुष्पों की वृष्टि करते हैं ।

849. सुषम सुषम काल :- अवसर्पिणी काल के पहले आरे का नाम

For Private and Personal Use Only

सुषम सुषम है, इस काल में सुख की बहुलता होती है । यह आरा चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण है ।

850. सुस्वर नाम कर्म :- जिस कर्म के उदय से कोयल के समान मधुर स्वर प्राप्त होता है, उसे सुस्वर नामकर्म का उदय कहते हैं ।

851. सौधर्म इन्द्र :- पहले देवलोक का नाम सौधर्म देवलोक है, उसके अधिपति का नाम सौधर्म इन्द्र है ।

852. स्कंध :- अनेक पुद्‌गल परमाणुओं के समूह को स्कंध कहते हैं ।

853. स्त्रीवेद :- पुरुष के साथ भोग की अभिलाषा को स्त्रीवेद कहते हैं अथवा स्त्री के आकार में शरीर की प्राप्ति हो, उसे स्त्रीवेद कहते हैं ।

854. स्थलचर :- भूमि पर चलनेवाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों को स्थलचर कहते हैं ।

855. स्थापना निक्षेप :- मुख्य वस्तु की अनुपस्थिति में उसकी स्मृति के लिए उसके जैसे आकारवाली वस्तु में मुख्य वस्तु की कल्पना करना उसे स्थापना निक्षेप कहते हैं । जैसे प्रभु की प्रतिमा में प्रभु की कल्पना करना ।

856. स्थावर जीव :- जो जीव एक ही स्थान पर स्थिर होते हैं अथवा अपनी इच्छानुसार कहीं गमन-आगमन नहीं कर सकते हैं, वे स्थावर कहलाते हैं । इसके पाँच भेद हैं-पृथ्वीकाय, अप्‌काय, तेउकास वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

857. स्थावर तीर्थ :- जिसके आलंबन से भवसागर से पार उतरा जाता है, उसे तीर्थ कहते हैं । जो तीर्थ एक ही स्थान पर स्थिर होते हैं, वे स्थावर तीर्थ कहलाते हैं । जैसे-शत्रुंजय, गिरनार आदि ।

858. स्वदारा संतोषव्रत :- अपनी ही स्त्री में संतोष भाव धारण करना और परस्त्री को माता या बहिन समान समझना, उसे स्वदारा संतोषव्रत कहते हैं ।

859. स्वयं संबुद्ध :- किसी भी व्यक्ति के उपदेश बिना जिस आत्मा ने स्वयं ही बोध प्रात किया हो, उसे स्वयं संबुद्ध कहते हैं ।

860. स्वर्गलोक :- वैमानिक देवों के रहने के आवास को स्वर्गलोक कहते हैं ।

861. स्वाध्याय :- जिसमें आत्मा का चिंतन-अध्ययन हो, उसे स्वाध्याय कहते हैं ।

For Private and Personal Use Only

862. स्वस्तिक :- प्रभु समक्ष जब अक्षत पूजा की जाती है, तब स्वस्तिक की रचना की जाती है। स्वस्तिक में रही चार पंखुड़ियाँ चार गतियों का सूचन करती हैं। अष्ट मंगल में स्वस्तिक की आकृति भी मंगल-स्वरूप है।

863. स्वयंभूरमण समुद्र :- मध्यलोक में जो क्रमशः द्वीप-समुद्र आये हुए हैं, उनमें सबके अंत में स्वयंभूरमण समुद्र है। यह समुद्र सबसे बड़ा अर्थात् आधे राजलोक के विस्तारवाला है, इसमें 1000 योजन लंबे मत्स्य पाए जाते हैं।

864. हिंसानुबंधी रौद्रध्यान :- जिस ध्यान में दूसरे जीवों को मार डालने के क्रूर विचार हों, उसे हिंसानुबंधी रौद्रध्यान कहते हैं।

865. हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा :- जिसमें मात्र वर्तमान काल का ही विचार हो।

866. हुंडक संस्थान :- यह नाम कर्म की प्रकृति है। इस कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांग बेडौल होते हैं।

867. ह्री :- इसके अनेक अर्थ हैं-

(1) लज्जा (2) एक दिक्कुमारी।

868. क्षणिक :- एक क्षण बाद जो नष्ट हो जानेवाला हो, वह क्षणिक कहलाता है।

869. क्षणिकवाद :- बौद्धमत, जो प्रत्येक वस्तु को क्षणस्थायी समझता है। इसके मत से प्रत्येक वस्तु दूसरे समय में नष्ट हो जाती है।

870. क्षपक श्रेणी :- घाति कर्मों का क्षय करने के लिए आत्मा क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होती है। क्षपक श्रेणी में रही आत्मा कर्मों को जड़मूल से उखाडने का काम करती है। क्षपकश्रेणी का प्रारंभ आठवें गुणस्थानक से होता है और 12वें के अंत में समाप्ति होती है। क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ बनी आत्मा अवश्य वीतराग और सर्वज्ञ बनती है।

For Private and Personal Use Only

प्रकाशन सहयोगी

शा. मगनलालजी

अ.सौ. मोहिनीबाई

पूज्य पिताजी **शा. मगनलालजी भेरुलालजी कोठारी**

(झीलवाडा-राज. निवासी) के शत्रुंजय महातीर्थ में चातुर्मास एवं उपधान तप अनुमोदनार्थ

निवेदक : पुत्र : श्रीपाल, यशपाल, नीलेश • पुत्रवधु : मधु, नीशा, हेमा

(मुन्नाभाई दवे-अ.सौ. तपस्याबेन)

पौत्र : निकुंज, नमन • पौत्री : रीया, दीया, प्रियदर्शना

फर्म : नेशनल मार्बल, गांधीनगर, Near टेलीफोन एक्सचेंज, I.I.T. Road, विक्रोली (W), मुंबई.

प्रकाशन सहयोगी

शा. शेषमलजी

श्रीमती तोसरबाई

पूज्य पिताजी **शा. शेषमलजी खुमानचंदजी पोरवार** तथा पूज्य माताजी

श्रीमती चोसरबाई शेषमलजी पोरवाल (उदयपुर-राज. निवासी) 90 वें वर्ष की बड़ी उम्र में भी पालीताणा चातुर्मास आराधना एवं जीवन मे की गई विविध तपश्चर्याओं की अनुमोदनार्थ

फर्म : न्यु गोल्ड पोइंट, बोरीवली (वे) Tel. 28926226
गजानन मील डीपो. बेंगलोर. Tel. 22269191
माय गोल्ड पोईन्ट, बोरीवली (वे) Tel. 28923266
निवास : वासुपूज्यस्वामी गृह मंदिर
शा. शेषमलजी खुमानचंदजी पोरवाल
48, बेदला रोड, फतहपुरा, पाली कोठी के सामने,
उदयपुर-313 001. Tel. : 2450624

निवेदक :
पुत्र : शांतिलाल, अशोककुमार (गजानन)
पुत्रवधु : मीना, प्रमिला
सुपौत्रवधु : वनिता, भुमीका
पौत्र : राकेश, नीलेश, राहुल
पौत्री : प्रियंका (जीनू), यासिका
पड पौत्री : तनीशा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का हिन्दी साहित्य

1. वात्सल्य के महासागर
2. सामायिक सूत्र विवेचना
3. चैत्यवन्दन सूत्र विवेचना
4. आलोचना सूत्र विवेचना
5. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना
6. कर्मन् की गत न्यारी
7. आनन्दघन चौबीसी विवेचना
8. मानवता तब महक उठेगी
9. मानवता के दीप जलाएं
10. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है
11. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो
12. युवानो ! जागो
13. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-1
14. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-2
15. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे
16. मृत्यु की मंगल यात्रा
17. जीवन की मंगल यात्रा
18. महाभारत और हमारी संस्कृति-1
19. महाभारत और हमारी संस्कृति-2
20. तब चमक उठेगी युवा पीढी
21. The Light of Humanity
22. अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी
23. युवा चेतना
24. तब आंसु भी मोती बन जाते है
25. शीतल नहीं छाया रे.(गुजराती)
26. युवा संदेश
27. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-1
28. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-2
29. श्रावक जीवन-दर्शन
30. जीवन निर्माण
31. The Message for the Youth
32. यौवन-सुरक्षा विशेषांक
33. आनन्द की शोध
34. आग और पानी-भाग-1
35. आग और पानी-भाग-2
36. शत्रुंजय यात्रा (द्वितीय आवृत्ति)
37. सवाल आपके जवाब हमारे
38. जैन विज्ञान
39. आहार विज्ञान
40. How to live true life ?
41. भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)
42. आओ ! प्रतिक्रमण करे (चौथी आवृत्ति)
43. प्रिय कहानियाँ
44. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव
45. आओ ! श्रावक बने
46. गौतमस्वामी-जंबुस्वामी
47. जैनाचार विशेषांक
48. हंस श्राद्ध व्रत दीपिका
49. कर्म को नहीं शर्म
50. मनोहर कहानियाँ
51. मृत्यु-महोत्सव
52. Chaitya-Vandan Sootra
53. सफलता की सीढ़ियाँ
54. श्रमणाचार विशेषांक
55. विविध-देववंदन (चतुर्थ आवृत्ति)
56. नवपद प्रवचन
57. ऐतिहासिक कहानियाँ
58. तेजस्वी सितारें
59. सन्नारी विशेषांक
60. मिच्छामि दुक्कडम
61. Panch Pratikraman Sootra
62. जीवन ने तुं जीवी जाण (गुजराती)
63. आवो ! वार्ता कहुं (गुजराती)
64. अमृत की बुंदे
65. श्रीपाल मयणा
66. शंका और समाधान भाग-1
67. प्रवचनधारा
68. धरती तीरथ'री
69. क्षमापना
70. भगवान महावीर
71. आओ ! पौषध करें
72. प्रवचन मोती
73. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह
74. श्रावक कर्तव्य-1
75. श्रावक कर्तव्य-2
76. कर्म नचाए नाच
77. माता-पिता
78. प्रवचन रत्न
79. आओ ! तत्वज्ञान सीखें
80. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद
81. जिनशासन के ज्योतिर्धर
82. आहार : क्यों और कैसे ?
83. महावीर प्रभु का सचित्र जीवन
84. प्रभु दर्शन सुख संपदा
85. भाव श्रावक
86. महान ज्योतिर्धर
87. संतोषी नर-सदा सुखी
88. आओ ! पूजा पढाएँ !
89. शत्रुंजय की गौरव गाथा
90. चिंतन-मोती
91. प्रेरक-कहानियाँ
92. आई वडीलांचे उपकार
93. महासतियों का जीवन संदेश
94. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन
95. Duties towards Parents
96. चौदह गुणस्थान
97. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन
98. मधुर कहानियाँ
99. पारस प्यारो लागे
100. बीसवीं सदी के महान् योगी
101. बीसवीं सदी के महान् योगी की अमर-वाणी
102. कर्म विज्ञान
103. प्रवचन के बिखरे फूल
104. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन
105. आदिनाथ-शांतिनाथ चरित्र
106. ब्रह्मचर्य
107. भाव सामायिक
108. राग म्हणजे आग (मराठी)
109. आओ ! उपधान-पौषध करें !
110. प्रभो ! मन-मंदिर पधारो
111. सरस कहानियाँ
112. महावीर वाणी
113. सदगुरु-उपासना
114. चिंतन रत्न
115. जैन पर्व-प्रवचन
116. नींव के पत्थर
117. विखुरलेले प्रवचन मोती
118. शंका-समाधान भाग-2
119. श्रीमद् प्रेमसूरीश्वरजी
120. भाव-चैत्यवंदन
121. Youth will shine then
122. नव तत्त्व-विवेचन
123. जीव विचार विवेचन
124. भव आलोचना
125. विविध-पूजाएँ
126. गुणवान् बनों
127. तीन-भाष्य
128. विविध-तपमाला
129. महान् चरित्र
130. आओ ! भावयात्रा करें
131. मंगल-स्मरण
132. भाव प्रतिक्रमण-1
133. भाव प्रतिक्रमण-2
134. श्रीपाल-रास और जीवन
135. दंड़क-विवेचन
136. आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें
137. सुखी जीवन की चाबियाँ
138. पांच प्रवचन
139. सज्झायों का स्वाध्याय
140. वैराग्य शतक
141. गुणानुवाद
142. सरल कहानियाँ
143. सुख की खोज
144. आओ संस्कृत सीखें भाग-1
145. आओ संस्कृत सीखें भाग-2
146. आध्यात्मिक पत्र
147. शंका-समाधान (भाग-3)
148. जीवन शणगार प्रवचन
149. प्रातः स्मरणीय महापुरुष (भाग-1)
150. प्रातः स्मरणीय महापुरुष (भाग-2)
151. प्रातः स्मरणीय महासतियाँ (भाग-1)
152. प्रातः स्मरणीय महासतियाँ (भाग-2)
153. ध्यान साधना
154. श्रावक आचार दर्शक
155. अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)
156. इन्द्रिय पराजय शतक
157. जैन-शब्द-कोष
158. नया दिन-नया संदेश

SHUBHAY Cell : 98205 30299

For Private and Personal Use Only